अमर उजाला

प्रवाह

महोत्सव विश्वास का

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक

स्थापना वर्ष : 1948

नई दिल्ली ■ बुधवार, 22 मई 2024

हम दोस्त बदल सकते हैं, लेकिन पड़ोसी नहीं।
-अटल बिहारी वाजपेयी

हेलीकॉप्टर हादसे में ईरान के राष्ट्रपति इब्राहिम रईसी की मौत ईरान के लिए तो दुखद है ही, इस्राइल और हमास के बीच जारी युद्ध के चलते पहले से ही अशांत पश्चिमी एशिया में भी इसकी गूंज सुनाई दे रही है। अगर वहां की घरेलू अस्थिरता से तेल की कीमतें बढ़ती हैं, तो इसका असर भारत पर भी पड़ेगा।

हादसे की गूंज

खराब मौसम के चलते उत्तर-पश्चिमी ईरान में एक दर्दनाक हेलीकॉप्टर दुर्घटना में ईरान के आठवें राष्ट्रपति डॉ. सैयद इब्राहिम रईसी और विदेश मंत्री समेत कुल आठ लोगों की मौत की खबर दहलाने वाली तो है ही, ऐसे वक्त में जब इस्राइल और हमास के बीच युद्ध से पूरे पश्चिमी एशिया में पहले ही अशांति फैली हुई है, इस हादसे की गूंज पूरे क्षेत्र में सुनाई दे रही है। दरअसल, रईसी कुछ अन्य लोगों के साथ अजरबैजान में किज कलासी और खोदाफरिन बांध का उद्घाटन करने गए थे और जब वे वहां से तबरेज शहर लौट रहे थे, तभी यह हादसा हुआ। हालांकि फिलहाल इसकी वजह खराब मौसम को ही बताया जा रहा है, लेकिन अजरबैजान, जहां ये हादसा हुआ, इस्राइल का मित्र तो माना ही जाता है, यह क्षेत्र इस्राइली खुफिया एजेंसी मोसाद का गढ़ भी रहा है। ऐसे में, किसी साजिश की आशंका से इन्कार नहीं किया जा सकता। उल्लेखनीय है कि रूढ़िवादी और कट्टर किस्म के रईसी ने उदारवादी राष्ट्रपति हसन रूहानी के आठ साल के शासन के बाद 2021 में देश की सत्ता संभाली। सर्वोच्च नेता अयातुल्ला अली खामेनेई के विश्वासपात्र रईसी अगले तीन वर्षों में ईरान के सबसे शक्तिशाली व्यक्तियों में से एक के रूप में उभरे और उन्हें खामेनेई के संभावित उत्तराधिकारी के रूप में भी देखा जाने लगा, तो इसकी वजहें स्पष्ट हैं। अपने कार्यकाल की शुरुआत से ही उन्होंने जहां घरेलू स्तर पर चीजों को नियंत्रित करना शुरू किया, वहीं रूस, चीन और भारत के साथ ईरान के संबंधों को मजबूत किया, हमास और हिजबुल्लाह जैसे आतंकी संगठनों को अपना समर्थन बढ़ाया और ईरान के परमाणु कार्यक्रम का भी विस्तार किया। चूंकि रईसी की मौत के बाद देश में 50 दिनों के भीतर राष्ट्रपति चुनाव होने हैं, उपराष्ट्रपति मोहम्मद मुखबेर फिलहाल कार्यवाहक राष्ट्रपति बनेंगे। राष्ट्रपति पद में बदलाव से ईरान की विदेश नीति में बदलाव की संभावना नहीं है, लेकिन वैश्विक व घरेलू अनिश्चितताओं के बीच देश के सबसे अनुभवी और वैचारिक रूप

से अनुशासित नेताओं में से एक का जाना ईरान के लिए कम दुखद नहीं है। डॉ. रईसी के निधन पर भारत में भी एक दिन का राष्ट्रीय शोक रखा गया, जो ईरान के साथ भारत के रिश्तों की घनिष्ठता को ही बताता है। करीब एक हफ्ते पहले ही दोनों देशों के बीच चाबहार बंदरगाह के विकास के लिए एक दस-वर्षीय समझौता हुआ है। रईसी के निधन के बाद कुछ समय के लिए ईरान का ध्यान स्वाभाविक ही अपने अंदरूनी मामलों को व्यवस्थित करने पर होगा, ऐसे में चाबहार समझौते की गति कुछ धीमी पड़ सकती है, लेकिन अगर वहां की घरेलू अस्थिरता से तेल की कीमतें बढ़ती हैं, तो इसका असर भारत पर भी पड़ेगा।

इस दोस्ती में वफा नहीं

रूस और चीन के बीच बढ़ती नजदीकी से भारत को परेशान होने की जरूरत नहीं है। रूस के साथ हमारी दशकों पुरानी परखी हुई दोस्ती है और हर जरूरत के वक्त रूस हमारे साथ खड़ा रहा है। भारत-चीन सीमा संघर्ष के तुरंत बाद भी रूस भारत को हथियार बेचने पर सहमत हो गया था।

इस साल फिर से रूस का राष्ट्रपति चुने जाने के बाद व्लादिमीर पुतिन अपनी पहली विदेश यात्रा पर चीन पहुंचे। आठ महीने में यह उनकी दूसरी चीन यात्रा है। रूस और चीन की इस बढ़ती नजदीकी को देखते हुए क्या भारत को चिंतित या निराश महसूस करना चाहिए? बिल्कुल नहीं, क्योंकि अंतरराष्ट्रीय संबंधों में एक के लाभ के बराबर दूसरे का नुकसान नहीं होता है।

रूस दुनिया का सबसे बड़ा देश है, जो दो महाद्वीपों-यूरोप और एशिया तक फैला है। एक विशाल पेंडुलम की कल्पना कीजिए। यह एक तरफ झुकता है, तो रूस यूरोप की ओर पश्चिम की तरफ देखता है तथा खुद को यूरोपीय सभ्यता का एक अपरिहार्य हिस्सा मानता है। जब पेंडुलम दूसरी दिशा में झुकता है, तो रूस पूर्व की तरफ देखता है तथा पश्चिमी सभ्यता एवं पश्चिमी मूल्यों की आलोचना करता है। फिर घोषणा करता है कि रूस का भविष्य एशिया में है। व्लादिमीर पुतिन के शासन में रूसी पेंडुलम पूर्व की ओर घूम गया है।

दीपक वोहरा
पूर्व राजनयिक

सोवियत संघ के विघटन के बाद के दशक में रूस मजबूती से पश्चिम की तरफ झुक गया था, यहां तक कि वह सोचने लगा था कि उसे यूरोपीय संघ और संभवतः नाटो में भी शामिल किया जा सकता है। लेकिन रूस और चीन के बीच बढ़ती नजदीकी के लिए अमेरिकी नेतृत्व में पश्चिमी देश जिम्मेदार हैं। दोनों देशों को प्रतिबंधों का सामना करना पड़ा। दोनों ने महसूस किया कि अकेले रहकर 80 साल पुरानी पश्चिमी तथाकथित 'नियम-आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था' को चुनौती नहीं दी जा सकती है, लेकिन अपनी शक्तियों को मिलाकर और एक-दूसरे से साझेदारी करके वे एक नई 'वास्तविकता आधारित अंतरराष्ट्रीय व्यवस्था' का निर्माण कर सकते हैं। रूस के पास वह सैन्य प्रौद्योगिकी है, जिसे चीन बेसब्री से पाना चाहता था और रूस को चीनी धन की जरूरत थी। फिर दोनों के बीच नजदीकी बढ़ी और रचनात्मक साझेदारी असीमित मित्रता में तब्दील होने लगी।

अमेरिकी राष्ट्रपति जो बाइडन पुतिन को 'हत्यारा तानाशाह' कहते हैं, जबकि चीनी राष्ट्रपति पुतिन के लिए बिल्कुल अलग भाषा का इस्तेमाल करते हैं। वर्ष 2022 में समरकंद में शंघाई सहयोग संगठन के शिखर सम्मेलन से परे जब दोनों नेता मिले, तो शी जिनपिंग ने पुतिन को 'मेरे प्यारे पुराने दोस्त' कहा। व्लादिमीर पुतिन और शी जिनपिंग के बीच व्यक्तिगत रिश्ते बहुत प्रगाढ़ हैं। आज, चीन रूसी युद्ध मशीन के लिए दोहरे उपयोग वाले महत्वपूर्ण घटकों की आपूर्ति करता है, जिसमें मशीन टूल्स, ड्रोन और सेमीकंडक्टर चिप्स शामिल हैं। जब अमेरिका ने इस पर आपत्ति जताई, तो चीन ने कहा कि हम यूक्रेन संकट में पक्षकार नहीं हैं और चीन तथा रूस के बीच के सामान्य व्यापार में हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिए। दोनों नेता बहु-ध्रुवीय दुनिया की वकालत करते हैं, जिसमें वे पश्चिम, विशेषकर अमेरिका का प्रतिकार करते हैं। साथ मिलकर, वे ईरान और सीरिया जैसे देशों के लिए एक व्यावहारिक विकल्प पेश कर सकते हैं, जो पश्चिम से ठगा हुआ महसूस करते हैं। ईरान के राष्ट्रपति की रहस्यमय तरीके से हेलीकॉप्टर दुर्घटना में मौत ईरान को रूस के करीब ला सकती है।

तो क्या पुतिन और शी जिनपिंग हमेशा के लिए अच्छे मित्र बने रहेंगे? बिल्कुल नहीं। सबसे पहले, तो वैश्विक राजनीति में 'हमेशा के लिए अच्छे मित्र' दुर्लभ होते हैं। चीनी कम्युनिस्ट नहीं जानते कि लोगों को कैसे प्रभावित किया जाता है और दोस्त बनाए जाते हैं। वे बस दूसरों की निष्ठा का सौदा करना जानते हैं। कई अन्य राष्ट्रों की तरह रूस को भी पता है कि चीन के साथ काम करना दोधारी तलवार पर चलने जैसा है। वर्ष 2015 में इंटरनेट पर एक रूसी फिल्म *चाइना-ए डेडली फ्रेंड* (चीन-एक घातक मित्र) काफी लोकप्रिय हुई थी, जो रूस के सुदूर पूर्व में चीनी आक्रमण पर केंद्रित थी। कई रूसी मानते हैं कि यह एक भूराजनीतिक टाइम बम है। रूस-चीन दोस्ती में इस बात का बहुत ज्यादा एहसास होता है कि रूस चीन का कनिष्ठ सहयोगी है, जो रूस के लोगों को हजम नहीं हो सकता है।

वर्ष 2000 में पुतिन ने लिखा कि 'रूस को हमेशा यूरेशियन देश होने का एहसास होता है, क्योंकि इसका मुख्य हिस्सा एशिया में है। इसलिए एशिया की ओर रुख करने का समय आ गया है।' विजयी पश्चिम द्वारा अपमानित किए जाने के बाद हैरानी नहीं कि 2005 में राष्ट्र के नाम अपने संबोधन में पुतिन ने कहा था कि 'सोवियत संघ का पतन सदी की सबसे बड़ी भूराजनीतिक तबाही थी।'

चीन रूसी सैन्य तकनीक हासिल करने और कम आबादी वाले साइबेरिया में उसकी जमीन को हथियाने की ताक में था। उसने संघर्षरत रूसी अर्थव्यवस्था में अरबों डॉलर का निवेश किया, और रूसी तकनीक से अपनी दूसरी पीढ़ी के हथियारों को उन्नत बनाया। नतीजतन, दोनों के बीच मतलब की दोस्ती हुई। रूस-चीन की मित्रता के चलते शंघाई सहयोग संगठन का गठन हुआ, जिसमें भारत शामिल हुआ।

लेकिन रूस-चीन की बढ़ती दोस्ती से क्या भारत की रूस के साथ दोस्ती खतरे में है? क्या हमें रूस के साथ अपने रिश्ते को कमजोर करना चाहिए? बिल्कुल भी नहीं। सोवियत संघ और उसके उत्तराधिकारी फेडरेशन ऑफ रसिया जरूरत के वक्त हमेशा हमारे साथ खड़ा रहा है, चाहे वह कश्मीर पर पश्चिम प्रेरित प्रस्तावों को वीटो करना हो, या 1971 में अमेरिकी सातवें बेड़े को रोकने में मदद करना हो, या 1950-60 के दशक में हमारे स्टील एवं तेल उद्योगों के लिए टेक्नोलॉजी देने की बात हो, या परमाणु-संचालित पनडुब्बियों या परमाणु ऊर्जा संयंत्रों के निर्माण सहित हमारी सेना को सर्वोत्तम हथियारों से लैस करना हो। रूस ने कभी हम पर प्रतिबंध नहीं लगाया, लेकिन पश्चिम ने ऐसा किया।

यूक्रेन के मुद्दे पर हमारे प्रधानमंत्री द्वारा सार्वजनिक रूप से यह कहने के अलावा कि यह युद्ध का नहीं, शांति का युग है, हमने अमेरिका या उसके ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी जैसे चाटुकारों की तरह रूस को नहीं कोसा। परिपक्व भारत अच्छी तरह से जानता है कि साझेदारी और वफादारी बदल सकती है, इसलिए हमने अमेरिका के साथ अपने रिश्ते में सुधार किया है। वर्ष 2020 के मध्य भारत-चीन सीमा संघर्ष के तुरंत बाद ही रूस भारत को हथियार बेचने पर सहमत हो गया था, और अमेरिकी आपत्तियों के बावजूद भारत को रूसी एस-400 विमान भेदी मिसाइल प्रणाली प्राप्त हुई थी। इसलिए भारत और रूस के रिश्ते निकट भविष्य में खत्म नहीं होने वाले हैं।

edit@amarujala.com

जीवन धारा

ओशो

आप दुख का आनंद भी ले सकते हैं। दुख सिर्फ आपके आसपास होता है, केंद्र में नहीं। जब आप इसे घटित होने देते हैं, इससे भागते नहीं हैं, घबराते नहीं हैं, तो एक सूक्ष्म आनंद आपके पूरे अस्तित्व में फैल जाता है।

दुख और पीड़ा भी हमें सीख देते हैं

***समाज** और उसकी निंदा की ओर मत देखिए। दूसरों का मूल्यांकन भी न कीजिए, न दूसरे के मूल्यांकन से परेशान हों। आप अकेले अद्वितीय और सुंदर हो, इसे स्वीकार करना चाहिए। जो कुछ भी घटित होता है, उसे घटित होने दें और उससे गुजर जाएं। इस तरह देखेंगे कि जल्दी ही पीड़ा एक सीख बन जाएगी और फिर यह रचनात्मक हो जाएगी। भय निर्भयता देगा। क्रोध से करुणा निकलेगी। नफरत की समझ से आपके भीतर प्यार का जन्म होगा। लेकिन ऐसा किसी संघर्ष से नहीं, बल्कि सतर्क जागरूकता के साथ गुजरने पर होता है। यदि आप हर अनुभव से गुजरने का निश्चय कर लें, तो मृत्यु होगी, जो सबसे गहन अनुभव है। साठ, सत्तर, अस्सी, सौ साल। लेकिन मृत्यु तीव्र है, क्योंकि यह फैली हुई नहीं है। यह तो एक क्षण में होती है। जिंदगी सौ साल से गुजरे या सत्तर साल से, लेकिन यह इतनी सघन नहीं हो सकती। मौत तो एक ही पल में आ जाती है। जब कृष्ण, बुद्ध, महावीर या ईसा मसीह कहते हैं कि तुम अमर हो, तो वह किसी सिद्धांत के बारे में बात नहीं कर रहे होते हैं, वह अपने अनुभव के बारे में बता रहे होते हैं। समाधि मृत्यु है, ध्यान मृत्यु है। कई बार ऐसे पल आएंगे जब आपको अचानक लगेगा कि आप मर रहे हैं। लेकिन इससे भागिए मत, इसे घटित होने दीजिए। क्योंकि अब यहां मृत्यु नहीं है, बल्कि आंतरिक लौ अनादि, अनंत अस्तित्व में आ गई है, जिसे आप महसूस कर सकते हैं। इसलिए जब मैं कहता हूं कि आनंदपूर्वक कष्ट सहो, तो यह विरोधाभासी लगता है। आपका मन सोचने लगता है कि समझौता कैसे किया जाए। लेकिन वास्तविकता यह है कि ये विरोधाभासी हैं नहीं, केवल ऐसे प्रतीत होते हैं। इसलिए आप दुख का आनंद भी ले सकते हैं। अब सवाल है कि दुख का आनंद कैसे लिया जाए? पहली बात तो यह कि यदि आप दुख का सामना करने के लिए तैयार हैं, तो आप अलग हैं। दुख तो है, लेकिन सिर्फ आपके आसपास। वह केंद्र में नहीं है। यह सदैव परिधि पर है और आप केंद्र हैं। इसलिए जब आप इसे घटित होने देते हैं, इससे भागते नहीं हैं, घबराते नहीं हैं, तो एक सूक्ष्म आनंद आपके पूरे अस्तित्व में फैल जाता है, क्योंकि आपको जीवन के बुनियादी सत्यों में से एक का अनुभव हो गया है कि आप आनंद हैं, पीड़ा नहीं। इसलिए जब मैं कहता हूं कि इसका आनंद लें, तो इसका मतलब यह नहीं कि आप अपने लिए कष्ट पैदा करें और फिर उसका आनंद लें। मैं तो बस इतना कह रहा हूं कि दुख मौजूद है। आपको उसे ढूंढने की जरूरत नहीं। जीवन अपने स्वभाव से ही दुख पैदा करता है। इसलिए इसे बहुत ही निष्पक्ष दृष्टि से देखना चाहिए।*

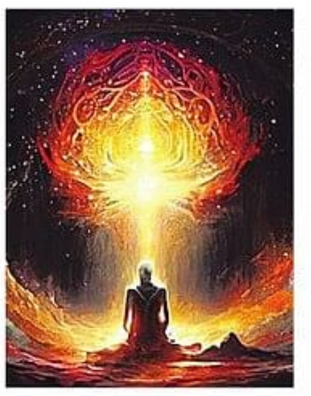

जब आप अचानक दुख देखते हैं, तो आप पीड़ित नहीं रहते। आप आनंद लेना शुरू कर देते हैं। पीड़ा के माध्यम से आप विपरीत ध्रुव यानी आनंदमय आतंरिक अस्तित्व के प्रति जागरूक हो जाते हैं। इसलिए जब मैं कहता हूं कि आनंद लें, तो मैं कह रहा होता हूं-स्रोत पर लौटें, केंद्रित हो जाएं।

स्वीकारना सीखें

सूत्र

डर, नफरत, ईर्ष्या आदि से किसी भी तरह से समस्या पैदा न करें। इसे स्वीकार करें, इससे गुजरें। इससे आप मृत्यु के भय सहित सभी पीड़ाओं को हरा देंगे। जो लोग परिधि पर हैं, वे पीड़ा में हैं। उनके लिए कोई परमानंद नहीं। जो लोग अपने केंद्र पर आ गए, उनके लिए कोई पीड़ा मौजूद नहीं। उनके लिए तो केवल परमानंद है।

दूसरा पहलू

मराठा सेनापति सदाशिव राव भाऊ ने जिस पेड़ के नीचे वीरगति पाई थी, वह पहले हरा था। बाद में धीरे-धीरे वह काला हो गया।

पानीपत के मैदान-ए-जंग में काला अंब की कहानी

अगर किसी युद्ध में बरछी, तीर, कटार, तलवार, बंदूक, तोप और महावीर योद्धाओं के साथ कोई पेड़ भी इतिहास के पन्नों में अलग से अपनी जगह बना ले, तो यकीनन वह कुछ खास ही होगा। पानीपत शहर में किसी बाशिंदे से तीसरे युद्ध के बारे में सवाल करने पर इस अलबेले पेड़ के महत्व का पता चलता है।

आप जैसे ही पूछेंगे कि अब्दाली और मराठों का युद्ध जिस मैदान पर हुआ था, वह कहां है, तुरंत जवाब में सवाल मिलेगा, क्या आप काला अंब के बारे में पूछ रहे हैं? काला अंब यानी काला आम। 14 जनवरी, 1761 को मराठा सेनापति सदाशिव राव भाऊ और अफगान सरदार अहमद शाह अब्दाली के बीच हुए भीषण युद्ध के शहीद सैनिकों की याद में बने स्मारक का नाम ही काला अंब है। स्मारक में प्रवेश करते ही मैदान-ए जंग में लोगों की नजरें पेड़ को ढूंढती हैं। यहां अब पेड़ तो नहीं है, पर उससे जुड़े किस्से बहुत हैं। पहले काला अंब सामान्य पेड़ था, पत्तियां हरी थीं और फल भी हरे ही लगते थे। युद्ध के बाद रंग काला पड़ गया। युद्ध में हुए रक्तपात में 70,000 से ज्यादा सैनिक मारे गए थे, जिससे पूरा पेड़ खून से लाल हो गया था। काटने पर खून निकलता था। इसका रंग धीरे-धीरे काला हो गया। फल भी काले लगने लगे। लेकिन इतिहासकार इस किस्से को सही नहीं मानते हैं।

चंद्रमोहन शर्मा

14 जनवरी, 1761 को मराठा सेनापति सदाशिव राव भाऊ और अफगान सरदार अहमद शाह अब्दाली के बीच हुए भीषण युद्ध में 70,000 सैनिक मारे गए थे।

इतिहासकारों के अनुसार, पेड़ का रंग पहले से ही काला था। इस पेड़ को पं. शुगन चंद ने खरीद लिया था और उससे बनी चौखट महारानी विक्टोरिया को भेंट की थी।

पानीपत के तीनों युद्धों पर कई किताब लिख चुके रमेश चंद्र पुहल कहते हैं कि पेड़ पहले से ही काला और विशालकाय था। सदाशिव राव भाऊ ने इसी पेड़ के नीचे वीरगति पाई थी। फिरंगी हुकूमत के दौरान उगरा खेड़ी गांव (इसी गांव की जमीन पर तीसरा युद्ध हुआ था) के पंडित शुगन चंद ने नीलामी में पेड़ खरीद लिया। उन्होंने इसे कटवाकर इसकी लकड़ी से दो उत्कीर्णित चौखटें बनवाईं। एक उपहार स्वरूप महारानी विक्टोरिया को इंग्लैंड भेज दी। दूसरी, 1906 में विक्टोरिया के करनाल आगमन पर उन्हें भेंट की। इसे ब्रिटिश म्यूजियम में रखा गया। वहां से सन 2000 में पानीपत के संग्रहालय में लाया गया, जहां यह आज भी रखी है। काला अंब स्मारक पर आम का पेड़ न मिलने पर लोग इस चौखट को देखने के लिए संग्रहालय में आते हैं। वैसे थाईलैंड और जमैका समेत कई देशों में काले आम के पेड़ पाए जाते हैं। पिछले कुछ समय में भारत में भी उत्तराखंड समेत कई जगह लोगों ने इसकी पौध लगाई है।

आंकड़े

बारामूला में रिकॉर्ड मतदान

बारामूला लोकसभा क्षेत्र में बीते सोमवार को 40 वर्ष बाद सबसे अधिक 58.17 फीसदी मतदान हुआ। 1989 में 5.48 फीसदी वोटिंग हुई थी।

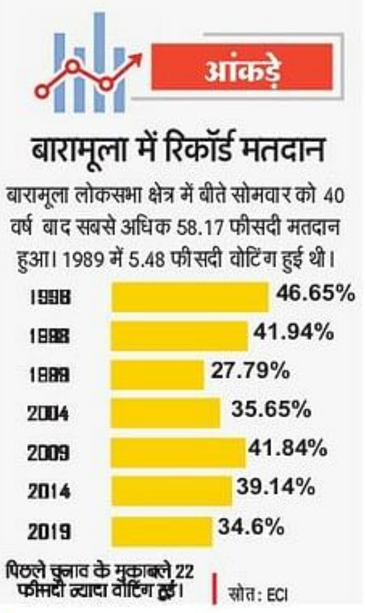

पिछले चुनाव के मुकाबले 22 फीसदी ज्यादा वोटिंग हुई। | सोत: ECI

मतंग ऋषि के कहने पर माता अंजनी ने पुत्र प्राप्ति के लिए 12 वर्ष तक भगवान शिव की तपस्या की। भोलेनाथ के वरदान से हनुमान का जन्म हुआ।

शिव का वरदान

अंतर्यात्रा
संकलित

पौराणिक कथाओं के अनुसार, केसरी और माता अंजनी काफी समय तक संतान सुख से वंचित रहे। मतंग ऋषि ने माता अंजनी को 12 वर्षों तक भगवान शिव की तपस्या और व्रत करने को कहा। माता अंजनी ने वैसा ही किया। उन्होंने भगवान शिव की घोर तपस्या की। तपस्या पूरी होने पर मतंग ऋषि ने माता अंजनी को आशीर्वाद दिया कि भगवान शिव शीघ्र ही आशीर्वाद देने आएंगे।

मतंग ऋषि की बात सुनकर माता अंजनी ने भगवान शिव के स्वागत और सम्मान के लिए छप्पन भोग तैयार किए। भगवान शिव ने माता अंजनी की परीक्षा लेने के लिए साधु वेश धरा। अंजनी ने जब साधु को भोजन परोसा, तो उन्होंने छप्पन भोग खाने की इच्छा व्यक्त की। माता अंजनी ने कहा, छप्पन भोग भगवान शिव के लिए हैं। इस पर साधु क्रोधित हो गए और अपना गुस्सा माता अंजनी पर व्यक्त करते हुए भगवान शिव को भला-बुरा कहने लगे।

माता अंजनी ने साधु से गुस्सा न करने और भगवान शिव का अपमान न करने का अनुरोध किया, लेकिन साधु भगवान शिव को अपशब्द कहते रहे। तब माता अंजनी ने अपने क्रोध पर काबू पाया और साधु को शिव जी के लिए बनाया छप्पन भोग खाने के लिए दिया। इससे प्रसन्न होकर साधु बने भगवान भोलेनाथ असली रूप में आ गए और माता अंजनी को आशीर्वाद दिया कि रुद्रावतार हनुमान आपके गर्भ से जन्म लेंगे, जो वेदों-शास्त्रों के महान ज्ञाता होंगे।

अमर उजाला

पुराने पन्नों से — 03 जुलाई, 1952

जमींदारियों पर सरकार के कब्जे की जिलाधीश द्वारा घोषणा

जमींदारियों पर सरकार के कब्जे की जिलाधीश द्वारा घोषणा

हजारियों, गांव पंचायतों व गांव सभाओं को सरकारी सम्पत्ति की रक्षा का आदेश

आज का कार्यक्रम

जिलाधीश जेएम रैना ने घोषणा की है कि जमींदारी उन्मूलन कानून के अंतर्गत आने वाली सारी जमीन व अन्य जगहों पर सरकार की ओर से उन्होंने कब्जा कर लिया है। और अब तक उन पर जिनके भी अधिकार थे, वे समाप्त हो गए हैं।

औसत से ज्यादा वोटिंग क्यों नहीं होती

यह विडंबना ही कही जाएगी कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में पंजीकृत मतदाताओं में से चालीस प्रतिशत मतदाता अपने मताधिकार का प्रयोग ही नहीं करते।

इंद्रकांत मिश्र

मुद्दा

मौजूदा लोकसभा चुनाव में औसत मतदान 60 प्रतिशत के आसपास रहना निर्वाचन आयोग ही नहीं, राजनेताओं के लिए भी चिंता का विषय है। इससे लोकतंत्र के मूल उद्देश्य पूरे होते नहीं दिखते। स्थिति यह है कि कुल पंजीकृत मतदाताओं के एक चौथाई हिस्से से भी कम का समर्थन पाकर पार्टियां सरकार बना लेती हैं और फिर पूरी आबादी का प्रतिनिधित्व करती हैं। उत्तर और पश्चिम इलाकों में, जहां इस समय प्रचंड गर्मी है, वहां तो कम मतदान हो ही रहे हैं, पर्वतीय क्षेत्रों और दक्षिण राज्यों, जहां गर्मी नहीं है, में भी मतदाताओं में उत्साह नहीं नजर आता है। इसकी एक वजह राजनीतिक व्यवस्था से मोहभंग भी हो सकता है।

निर्वाचन आयोग और राजनीतिक दलों की तरफ से मतदाताओं को मतदान के लिए जागरूक करने के तमाम प्रयास किए जाते हैं। लोगों को अपने मताधिकार का उपयोग करने के लिए ऑनलाइन और

ऑफलाइन प्रेरित किया जाता है, लेकिन इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। कुछेक अपवादों को छोड़ दें, तो कभी वोटिंग औसत से ज्यादा नहीं बढ़ी। सिर्फ 2014 और 2019 में मतदाताओं ने उत्साह दिखाया था और औसतन 66 प्रतिशत से ज्यादा मतदान हुआ था।

सवाल यह है कि ऐसे में क्या उपाय किए जाएं कि मतदाता मतदान करने के लिए प्रेरित हों। कम वोटिंग भारत ही नहीं, दुनिया भर के लोकतांत्रिक देशों के लिए चिंता का विषय है। कई देशों ने मताधिकार का उपयोग करना अनिवार्य कर दिया, तो कुछ देशों ने मतदान नहीं करने पर अलग-अलग तरह से दंड लगाने के कानून बनाए। हालांकि कुछ देशों ने बाद में व्यावहारिक परेशानियों के चलते इसे रद्द कर दिया।

सबसे पहले बेल्जियम ने 1892 में वोटिंग अनिवार्य करने का कानून बनाया। फिर अर्जेंटीना ने 1914 में और ऑस्ट्रेलिया ने 1924 में ऐसा ही कानून लागू किया। उसके बाद ऑस्ट्रिया, ब्राजील, मिस्र, फिजी, बुल्गारिया, बोलीविया, इटली, ग्रीस, फ्रांस (सिर्फ सीनेट), अमेरिका (कुछ राज्य), मैक्सिको, फिलीपीन, स्विट्जरलैंड, थाईलैंड, स्पेन, तुर्किये, वेनेजुएला, पेरू, पनामा आदि ने भी कानून बनाए। इनमें कुछ देशों ने कानून को आंशिक या पूर्ण रूप से रद्द कर दिया।

भारत की स्थिति कुछ भिन्न है। यहां कई बार वोटिंग अनिवार्य करने को लेकर लोकसभा में चर्चा हुई। यही निष्कर्ष निकला कि ऐसा करना व्यावहारिक नहीं होगा। इस संबंध में सबसे पहले चर्चा 1950 में तब शुरू हुई, जब जनप्रतिनिधित्व अधिनियम लागू किया जा रहा था। डॉ. भीमराव आंबेडकर सहित संविधान सभा के कई सदस्यों ने इसे सिरे से नकार दिया। 1990 में दिनेश गोस्वामी कमेटी ने वोटिंग प्रतिशत बढ़ाने के उपायों पर विचार करने के दौरान इसे अनिवार्य किए जाने पर भी गौर किया और अंततः इसे नामंजूर कर दिया। वर्ष 2001 में *कंसल्टेशन पेपर ऑफ नेशनल कमीशन रिव्यू द वर्किंग ऑफ द कंस्टीट्यूशन* ने इस मुद्दे पर विचार करने के बाद कहा कि वोट नहीं देने पर दंड का प्रावधान रखने से कई जटिलताएं पैदा होंगी। चुनावी खर्च को लेकर गठित तारकुंडे कमेटी ने भी अपनी रिपोर्ट में कहा कि वोटिंग अनिवार्य करने से मतदाताओं में रोष पैदा होगा और इसके दुरुपयोग की आशंका रहेगी। बेहतर होगा कि वोटरों को मतदान के लिए उत्साहित किया जाए।

लोकसभा में 2004 , 2009, 2012 एवं 2014 में प्राइवेट बिल पेश किए गए, लेकिन हर बार प्रस्ताव का विरोध हुआ। वर्ष 2009 में इस पर सुप्रीम कोर्ट में जनहित याचिका पेश की गई, जिसमें मताधिकार का उपयोग नहीं करने वाले के घर की बिजली, पानी आदि काटने और आर्थिक दंड लगाने की मांग की गई। कोर्ट ने इसे बेहद अमानवीय बताकर याचिका खारिज कर दी। देश में चुनावों में अशिक्षित और अल्पशिक्षित मतदाताओं में मतदान को लेकर जितना उत्साह दिखता है, उतना प्रबुद्ध वर्ग में नहीं। प्रबुद्ध वर्ग का एक बड़ा हिस्सा आलस और अरुचि की वजह से घर से नहीं निकलता। वोटिंग लिस्ट में गड़बड़ी होना भी कम मतदान का एक कारण है। चुनाव से पहले मतदाता सूची को ठीक से अपडेट नहीं किया जाता और किया भी जाता है, तो उनमें कई त्रुटियां दिखती हैं। लोगों को शिकायत रहती है कि नाम शामिल करने, संशोधन आदि का फॉर्म बूथ लेवल अफसर (बीएलओ) को समय पर देने के बाद भी कुछ नहीं होता। यह विडंबना ही कही जाएगी कि दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र में पंजीकृत वोटरों में से 40 प्रतिशत वोट ही नहीं देते।

कल्पमेधा

हर सुधार का कुछ न कुछ विरोध अनिवार्य रूप से होता है। परंतु विरोध और आंदोलन एक सीमा तक स्वस्थ समाज के लक्षण होते हैं।

– गांधी

मतदान में उत्साह

इस बार के आम चुनाव में जब बहुत सारी जगहों पर मतदान में उत्साह की कमी देखी जा रही है, कश्मीर घाटी से इसमें बढ़ोतरी के आंकड़े वहां के लोगों में लोकतंत्र के प्रति बढ़ते विश्वास का संकेत देते हैं। बारामूला में अट्ठावन फीसद से ऊपर मतदान हुआ। सोपोर में पिछले लोकसभा चुनाव की तुलना में चार फीसद बढ़ कर इस बार चौवालीस फीसद मतदान दर्ज हुआ। ये आंकड़े ऐसे समय में आए हैं, जब कश्मीर के कई हिस्सों में माहौल अनुकूल नहीं है। मतदान से एक दिन पहले आतंकवादियों ने शोपियां में एक स्थानीय नेता की गोली मार कर हत्या कर दी थी। पहलगाम में भी एक पर्यटक दंपति को निशाना बनाया गया था। आतंकी संगठन लगातार स्थानीय लोगों पर मुख्यधारा की व्यवस्था में हिस्सेदारी से दूर रहने का दबाव बनाते रहे हैं। थोड़े-थोड़े समय पर हो जाते आतंकवादी हमलों से यही लगता था कि दहशतगर्दों को स्थानीय लोगों का समर्थन हासिल है और वे उन्हें पनाह देते हैं। फिर जम्मू-कश्मीर का विशेष दर्जा समाप्त होने के बाद जिस तरह घाटी में लगातार असंतोष नजर आ रहा था, उससे यही आशंका बनी हुई थी कि वहां के लोग चुनावों में उत्साह नहीं दिखाएंगे। शायद यही भय था कि निर्वाचन आयोग ने भी वहां लोकसभा के चुनाव कराने की घोषणा तो कर दी, पर विधानसभा चुनावों को टालना बेहतर समझा।

मगर लोकसभा चुनाव में जिस तरह वहां लोग मतदान के लिए घरों से निकले, उससे साफ हो गया है कि उन्होंने दहशतगर्दों के दबाव की परवाह न करते हुए लोकतांत्रिक प्रक्रिया पर भरोसा जताया है। लोग मुख्यधारा व्यवस्था से जुड़ना चाहते हैं। इससे स्वाभाविक ही घाटी और राष्ट्रीय स्तर के सियासी दलों और निर्वाचन आयोग का भी उत्साह बढ़ेगा। इस हकीकत से इनकार नहीं किया जा सकता कि कश्मीर के आम लोग दरअसल अमन चाहते हैं। दहशतगर्दी से उनकी जिंदगी में दुश्वारियों के सिवा और कुछ नहीं आता। आतंकियों और सुरक्षाबलों के टकराव में अक्सर उन्हें अपने रोजी-रोजगार से दूर रहना पड़ता है। सुरक्षा तलाशी और प्रशासनिक सख्ती के चलते हर समय उन्हें एक तरह के खौफ में जिंदगी बसर करनी पड़ती है। इसलिए आम लोग यही चाहते हैं कि खौफ का माहौल खत्म हो, अमन की सूरत बने। चुनाव होंगे, तभी लोकतांत्रिक प्रक्रिया शुरू होगी, उनकी बेहतरी के फैसले किए जा सकेंगे, यह बात वे अच्छी तरह जानते हैं। सिर्फ कुछ अलगाववादी ताकतें और सियासी लोग मसलों को उलझाए रखना चाहते हैं।

जम्मू-कश्मीर में विधानसभा सीटों के लिए परिसीमन पूरा हुए काफी समय बीत चुका है। तमाम राजनीतिक दल वहां लंबे समय से स्थगित लोकतांत्रिक प्रक्रिया की बहाली की मांग उठाते रहे हैं। अब तो घाटी के ज्यादातर हिस्से तनावमुक्त नजर आते हैं। बारामूला, शोपियां, अनंतनाग, सोपोर जैसे कुछ इलाकों में जरूर रह-रह कर आतंकी गतिविधियां सिर उठा लेती हैं, पर उनमें भी चुनाव को लेकर लोगों के उत्साह से यही जाहिर हुआ है कि आतंकी मंसूबे पस्त पड़ चुके हैं। लोकतंत्र के प्रति लोगों के इस विश्वास और भरोसे को और मजबूत बनाने की जरूरत है। यह तभी संभव होगा, जब वहां जल्द से जल्द विधानसभा के चुनाव भी करा लिए जाएं। इससे पहले स्थानीय निकायों के चुनाव हुए थे, तब भी लोगों ने उसमें बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया था। हालांकि निर्वाचन आयोग ने भरोसा दिलाया है कि लोकसभा चुनावों के ठीक बाद इसकी प्रक्रिया भी शुरू की जाएगी।

युद्ध का कठघरा

यह समझना मुश्किल है कि हमास और इजराइल के बीच जारी जंग से अब तक हासिल क्या हुआ है, लेकिन इतना साफ है कि इस त्रासदी में मानवता कराह रही है। कहने को दुनिया के वे देश भी मानवता की दुहाई देते हैं, जिनके हमलों में सैनिकों से ज्यादा निर्दोष आम लोगों की जान चली जाती है। यों तो बहुत कुछ तबाह करने के बाद आखिर किसी बिंदु पर युद्ध खत्म होता है, लेकिन उसके बाद हजारों लोगों की मौत के लिए शायद ही किसी की जिम्मेदारी तय की जाती है। मगर अंतरराष्ट्रीय आपराधिक अदालत ने सोमवार को युद्ध के दौरान अपराधों के लिए इजराइल और हमास के प्रमुखों पर आरोप लगाते हुए उन्हें मानवता के खिलाफ जघन्य अपराधों को अंजाम देने वाले वैश्विक नेताओं की सूची में डाल दिया। अदालत ने इजराइल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतन्याहू सहित वहां के दो नेताओं और हमास के तीन नेताओं के खिलाफ गिरफ्तारी वारंट की भी घोषणा की। मगर इजराइल ने खुद को 'लोकतांत्रिक' बताते हुए अदालत के इस रुख को 'वास्तविकता से कोसों दूर' बताया और हमास ने खुद को 'पीड़ित' कहा और इजराइल की तुलना 'जल्लाद' से की है। मगर प्रतीक रूप से भी देखें तो आइसीसी के फैसले की अपनी अहमियत है।

करीब सात महीने पहले इजराइली सीमा में घुस कर हमास का आतंकी हमला निश्चित तौर पर बर्बरता की पराकाष्ठा था। इसके लिए वह दुनिया भर के मानवतावादियों के निशाने पर है। मगर हमास के उस हमले के जवाब में अब तक इजराइल ने जो रुख अख्तियार किया हुआ है, वह अब दुनिया भर के लिए चिंता का सबब बन गया है। हमास के हमले में करीब बारह सौ आम लोगों की जान चली गई थी, उसके जवाब में इजराइल की सैन्य कार्रवाई में अब तक पैंतीस हजार से ज्यादा आम फिलिस्तीनी मारे जा चुके हैं। उनमें एक बड़ी संख्या बच्चों और महिलाओं की है। इजराइली हमले में अस्पतालों और हमले से बचने की पनाहगाहों को भी नहीं बख्शा गया। इजराइल के हमास पर हमले में कितने आतंकी मारे गए, यह साफ नहीं है, लेकिन इस क्रम में हजारों निर्दोष आम फिलिस्तीनियों को मार डाला गया। सवाल है कि इतने बड़े पैमाने पर चल रहे कत्लेआम की जिम्मेदारी तय कर क्या दोषी को सजा दी जा सकेगी?

लाचार रोगी लचर सुविधाएं

नीति आयोग ने पिछले दिनों स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च बढ़ाने की जरूरत रेखांकित की थी। यह कटु सत्य है कि हमारे देश में आबादी की जरूरत के हिसाब से स्वास्थ्य सेवाएं दयनीय स्थिति में हैं।

रोहित कौशिक

धीरे-धीरे सरकारी अस्पतालों की स्थिति में सुधार हो रहा है, मगर देश की जनसंख्या को देखते हुए यह सुधार काफी नहीं है। इस दौर में भी देश के अनेक सरकारी अस्पतालों में कर्मचारियों की भारी कमी है। इतना विकास होने के बावजूद जिला सरकारी अस्पतालों में सभी परीक्षण नहीं हो पाते हैं। इस वजह से रोगियों को निजी डाक्टरों से परीक्षण कराने पड़ते हैं। कई बार सरकारी सेवा में कार्यरत डाक्टर लापरवाही बरतते हैं, तो कई बार सरकारी डाक्टर संसाधनों के अभाव में भी बेहतर काम नहीं कर पाते हैं। अनेक जगहों पर सरकारी अस्पतालों में वर्षों तक मशीनें खराब पड़ी रहती हैं। डाक्टरों द्वारा विभाग को कई पत्र लिखने के बाद भी व्यवस्था में सुधार नहीं होता है। ऐसे माहौल में योग्य डाक्टरों का उत्साह कम हो जाता है। इसलिए लापरवाह डाक्टरों पर कार्रवाई और ईमानदार डाक्टरों के समर्पण को व्यवस्था की मार से बचाने की अपेक्षा स्वाभाविक है।

हाल ही में दिल्ली के राममनोहर लोहिया अस्पताल में भ्रष्टाचार का खुलासा हुआ। इस अस्पताल के दो चिकित्सकों समेत ग्यारह लोगों को गिरफ्तार किया गया। उन पर रिश्वत लेकर कुछ खास कंपनियों के उत्पाद को बढ़ावा देने का आरोप है। उन पर मरीजों से भर्ती करने के लिए अवैध रूप से वसूली का भी आरोप है। जब देश की राजधानी के अस्पतालों में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया जा रहा है, तो दूर-दराज के अस्पतालों की स्थिति का सहज ही अंदाजा लगाया जा सकता है।

पिछले दिनों नीति आयोग ने स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च बढ़ाने की जरूरत रेखांकित की थी। यह कटु सत्य है कि हमारे देश में आबादी की जरूरत के हिसाब से स्वास्थ्य सेवाएं दयनीय स्थिति में हैं। भारत में स्वास्थ्य सेवाओं में जीडीपी का मात्र डेढ़ फीसद खर्च होता है। दुनिया के कई देश स्वास्थ्य सेवाओं की मद में आठ से नौ फीसद तक खर्च कर रहे हैं। कोराना काल में हमारे देश की लचर स्वास्थ्य सेवाओं की पोल खुल गई थी। अगर हमारे देश का स्वास्थ्य ढांचा बेहतर होता, तो कोराना काल में जनता को ज्यादा सुविधाएं दी जा सकती थीं। उस वक्त जहां एक ओर अनेक डाक्टर कई तरह के खतरे उठा कर अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर अनेक निजी अस्पतालों का ध्यान आर्थिक लाभ कमाने पर था। इस दौर में भी जब गंभीर रोगों से पीड़ित मरीजों के लिए अस्पतालों में स्ट्रेचर जैसी मूलभूत सुविधाएं न मिल पाएं, तो देश की स्वास्थ्य सेवाओं पर सवाल उठना लाजमी है। इस प्रगतिशील दौर में भी ऐसी अनेक खबरें प्रकाश में आई हैं कि अस्पताल गरीब मरीज के शव को घर पहुंचाने के लिए एंबुलेंस तक उपलब्ध नहीं करा पाए।

गौरतलब है कि पिछले दिनों 'सेंटर फार डिजीज डाइनामिक्स, इकोनामिक्स ऐंड पालिसी' (सीडीडीईपी) द्वारा जारी एक रपट में बताया गया था कि भारत में लगभग छह लाख डाक्टरों और बीस लाख नर्सों की कमी है। भारत में 10,189 लोगों पर एक सरकारी डाक्टर है, जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने एक हजार लोगों पर एक डाक्टर की सिफारिश की है। इसी तरह हमारे देश में 483 लोगों पर एक नर्स है। रपट के अनुसार भारत में एंटीबायोटिक दवाइयां देने के लिए प्रशिक्षित कर्मियों की कमी है, जिससे जीवन रक्षक दवाइयां मरीजों को नहीं मिल पाती हैं। हमारे देश में व्यवस्था की नाकामी और विभिन्न वातावरणीय कारकों के कारण बीमारियों का प्रकोप ज्यादा होता है। भारत में डाक्टरों की उपलब्धता विएतनाम और अल्जीरिया जैसे देशों से भी बदतर है। हमारे देश में इस समय लगभग 7.5 लाख सक्रिय डाक्टर हैं। डाक्टरों की कमी के कारण गरीब लोगों को स्वास्थ्य सुविधाएं मिलने में देरी होती है। यह स्थिति अंततः पूरे देश के स्वास्थ्य को प्रभावित करती है।

> स्वास्थ्य और परिवार कल्याण पर गठित संसदीय समिति ने पिछले दिनों जारी अपनी रपट में माना था कि हमारे देश में आम लोगों को समय पर स्वास्थ्य सुविधाएं न मिलने के अनेक कारण हैं। इसलिए स्वास्थ्य सुविधाओं को और तीव्र बनाने की जरूरत है। दरअसल, स्वास्थ्य सेवाओं के मुद्दे पर भारत अनेक चुनौतियों से जूझ रहा है। हालात ये हैं कि जनसंख्या वृद्धि के कारण बीमार लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। गरीबी और गंदगी के कारण विभिन्न संक्रामक रोगों से पीड़ित लोग इलाज के लिए तरस रहे हैं। गौरतलब है कि चीन, ब्राजील और श्रीलंका जैसे देश स्वास्थ्य के क्षेत्र में हमसे ज्यादा खर्च करते हैं।

स्वास्थ्य और परिवार कल्याण पर गठित संसदीय समिति ने पिछले दिनों जारी अपनी रपट में माना था कि हमारे देश में आम लोगों को समय पर स्वास्थ्य सुविधाएं न मिलने के अनेक कारण हैं। इसलिए स्वास्थ्य सुविधाओं को और तीव्र बनाने की जरूरत है। दरअसल, स्वास्थ्य सेवाओं के मुद्दे पर भारत अनेक चुनौतियों से जूझ रहा है। हालात ये हैं कि जनसंख्या वृद्धि के कारण बीमार लोगों की संख्या बढ़ती जा रही है। गरीबी और गंदगी के कारण विभिन्न संक्रामक रोगों से पीड़ित लोग इलाज के लिए तरस रहे हैं। गौरतलब है कि चीन, ब्राजील और श्रीलंका जैसे देश स्वास्थ्य के क्षेत्र में हमसे ज्यादा खर्च करते हैं। जबकि पिछले दो दशक में भारत की आर्थिक वृद्धि दर चीन के बाद शायद सबसे अधिक रही है। इसलिए पिछले दिनों योजना आयोग की एक विशेषज्ञ समिति ने भी यह सिफारिश की थी कि सार्वजनिक चिकित्सा सेवाओं के लिए आबंटन बढ़ाया जाए।

विडंबना है कि भारत में स्वास्थ्य योजनाएं भी लूट-खसोट की शिकार हैं। दूसरी ओर, निजी अस्पताल और डाक्टर चांदी काट रहे हैं। पिछले दिनों भारतीय चिकित्सा परिषद ने डाक्टरों द्वारा दवा कंपनियों से लेने वाली विभिन्न सुविधाओं को देखते हुए एक आचार संहिता के तहत डाक्टरों को दी जाने वाली सजा की रूपरेखा तय की थी। मगर अब भी डाक्टर दवा कंपनियों से विभिन्न सुविधाएं प्राप्त कर रहे हैं और इसका बोझ रोगियों पर पड़ रहा है। आज यह किसी से छिपा नहीं है कि दवा कंपनियां अपनी दवाइयां लिखवाने के लिए डाक्टरों को महंगे उपहार देती हैं। इसलिए डाक्टर इन कंपनियों की दवाइयां बिकवाने की जी-तोड़ कोशिश करते हैं। हद तो तब हो जाती है जब कुछ डाक्टर अनावश्यक दवाइयां लिखकर दवा कंपनियों को दिया वचन निभाते हैं। इस व्यवस्था में डाक्टर के लिए दवा कंपनियों का हित रोगी के हित से ऊपर हो जाता है। पर, जो डाक्टर सेवाभाव से मरीजों के हितों के लिए रात-दिन एक कर रहे हैं उन पर भला कौन अंगुली उठाएगा।

आज अनेक डाक्टर गांवों की तरफ रुख नहीं करते हैं। दरअसल, इस दौर में स्वास्थ्य सेवाओं की बदहाली का खमियाजा ज्यादातर बच्चों, महिलाओं और बूढ़े लोगों को उठाना पड़ रहा है। इसी वजह से देश के अनेक राज्यों में जहां एक ओर बच्चे विभिन्न गंभीर बीमारियों के कारण काल के गाल में समा रहे हैं, तो दूसरी ओर महिलाओं को भी बुनियादी स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध नहीं हो पा रही हैं। इस मामले में वृद्धों का हाल तो और दयनीय है। अनेक परिवारों में वृद्धों को मानसिक संबल नहीं मिल पाता। साथ ही उनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता भी कम हो जाती है। ऐसी स्थिति में उन्हें जरूरी स्वास्थ्य सेवाएं भी मुहैया न हों तो उनका जीवन नरक बन जाता है। इसलिए सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं का चुस्त-दुरुस्त और ईमानदार होना न केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से, बल्कि सामाजिक दृष्टि से भी जरूरी है। दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि अभी तक ऐसा नहीं हो पाया है। देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास हेतु बदहाल सरकारी स्वास्थ्य सेवाओं को पटरी पर लाने के लिए एक गंभीर पहल की जरूरत है।

कहां गए प्याऊ!

संदीप पांडे 'शिष्य'

आजकल पैदल चलते हुए अक्सर पुराने समय के वे प्याऊ बहुत याद आने लगे हैं। इन दिनों बस के इंतजार में बार-बार बीस रुपए की प्लास्टिक की बोतल का पानी गटकते हुए तो प्याऊ बहुत ही याद आता है। यह पता नहीं कि प्लास्टिक की बोतल में पानी कितने दिन पहले भरा गया होगा। आज से पचास साल पहले गांव के बाहर बस ठहराव की जगह पर प्याऊ मिल जाता था। ताजा जल भरा रहता था। उसे पीकर गला ही नहीं, जिगर भी तर हो जाता था। एक समय था जब घनघोर गर्मी की विकट प्यास में सूरज की प्रचंड लपटों के बीच चलते राही अपनी जलती हुई आंखों से जो देखते थे, वह एक छोटा-सा ठिकाना होता था। आमतौर पर घास-फूस से बना होता था। कभी-कभार बरगद की छांव में बने गोल चबूतरे पर भी प्याऊ हर सौ दो सौ कदम पर होता ही था। प्याऊ का दूर से दर्शन भी मनमोहक होता था। गीले और माटी की खुशबू से भरे मटके देख चैन और सूखे कंठ में भी पानी आ जाता था।

मगर अब वहां से वह सब गायब है। काले धारीदार कोरे मटके, गीली भुरभुरी मिट्टी, लंबी तार से बंधा हुआ डिब्बा... उसके छोर से गिरते झरने की भांति धार बनाता हुआ पानी जब जाता था हलक में तो लगता था कि अब जान वापस आ गई... अब आगे और पैदल चल सकते हैं। इतना ही नहीं, कितने ही प्याऊ ऐसे थे, जहां गुड़ की डली, भुना हुआ चना, मटर के दाने और कभी-कभार बताशा, नमकीन मुरमुरा भी एक कटोरे में रखा होता था। कितनी बार सूखे बेर भी रखे होते थे। तब कोई लालची न था। जरूरत भर का चख लेते थे। चना-चबेना ऐसा था कि जिसे मुट्ठी भर चबाकर राहगीर और मजदूर की खूब हौसलाआफजाई हो जाती थी। मगर आज यह सब दृश्य तो गायब ही हैं और गायब हो रही है वह एक बूढ़ी मां भी, जो चंद सिक्के के लिए बैठी रहती थी। पानी पिलाती थी उस छोटी-सी झोपड़ी से, जिसे हम प्याऊ के नाम से जानते थे।

आज लोग आधुनिक रंग में रंगे अपनी प्लास्टिक की बोतलों में ठंडा पानी भरकर रखते हैं या फिर जब मन हुआ तब दुकान पर जाकर पैसा देकर खरीद लेते हैं। जबकि हमारे पूर्वजों के पास इस गर्मी से निपटने के लिए बुद्धिमान तरीके थे। गांव और देहात की मुख्य सड़कों पर पीने के पानी के मटके भरे रहते या छाया से भरी प्याऊ हुआ करता था, जिसका मतलब था दिन भर ठंडा पानी। धीरे-धीरे घरों के ठीक अंदर पानी की पाइप लाइनें चलने के कारण ये प्याऊ अनुपयोगी हो गए और आखिर सजावटी टुकड़ों में ही सिमट कर रह गए और कुछ गायब हो गए। सबसे दुखद घटना तब हुई थी, जब आज से कुछ बरस पहले हमारे गांव वालों ने एक बड़े-से प्याऊ को ध्वस्त कर दिया। उस अनमोल तथा सार्वजनिक जगह को फर्जी कागज बनाकर एक दुकान बनने के लिए बेच दिया गया।

एक समय था जब राहगीर और मजदूर अपना पसीना सुखाने तथा थके हुए पैरों को आराम देने के लिए जीवनदायी प्याऊ की ओर देखते थे। प्याऊ के चारों तरफ कितनी शीतलता रहती थी! आज भी शहर में कुछ लोग अखबार की सुर्खी बनने के लिए कुछ दिन या कुछ घंटे का प्याऊ लगा रहे हैं, फिर उसे एकदम ही भूल जाते हैं। जबकि हमारे समय में प्याऊ में साफ जल तो होता ही था, आसपास रंग-रोगन भी होता रहता था।

आज हमारे नगर में ऐसे कुछ बचे हुए सार्वजनिक प्याऊ हैं, जो लोगों की प्यास बुझाने की बजाय बीमारियां दे रहे हैं। ज्यादातर प्याऊ केंद्रों पर पसरी गंदगी और कई वर्षों से टंकी की सफाई न होने से गंदा और दुर्गंधयुक्त पानी आता है। लोगों की भी लापरवाही कि जिन प्याऊ से उन्हें राहत और जीवन मिलता है, उनकी अनदेखी करने में उन्हें हिचक नहीं होती। बिगड़ती हालत की वजह से वे प्याऊ लोगों की जितनी प्यास बुझाते हैं, उससे ज्यादा वे बीमारियों का प्रसार करते होंगे। मगर शायद सभी लोग इतने ही लापरवाह नहीं हैं। गिनती के ही सही, लोग सजग और संवेदनशील हैं। आज भी कुछ प्याऊ ऐसे मिल जाएंगे, जहां साफ पानी मिल जाता है और वहां की साफ-सफाई मन को भी राहत देती है।

एक बार शहर में एक जगह छोटे-से ठेले पर आधा दर्जन से अधिक मटके रखकर प्याऊ का शुभारंभ किया गया था, ताकि राहगीरों को शीतल पेयजल उपलब्ध हो सके। मटके रखने वाले ने बताया कि वे दो चाय की दुकानें चलाते हैं। गर्मी के मौसम में राहगीरों को शीतल पेयजल नहीं मिल पाता था। उन्होंने अपनी आर्थिक स्थिति के हिसाब से एक ठेला लेकर उस पर आधा दर्जन से अधिक मटके रखा, लोगों या राहगीरों को ठंडा पानी मिल सके। खुश होकर उन्होंने बताया कि मटके रखे जाने के बाद उनकी सिर्फ देखरेख और सुबह-शाम पानी भरने की जिम्मेदारी रहती है, लेकिन इससे सैकड़ों राहगीरों को तेज गर्मी में ठंडा पानी मिल जाता है। आते-जाते मजदूर और बाकी लोग जब इन मटकों से पानी पीकर तृप्त होते हैं, तब भी उनको देखकर अपने गांव का प्याऊ याद आता है, जिसकी हर पंद्रह दिन में सफाई की जाती थी। मटके रोज भरे जाते थे। प्याऊ के समीप नीम और गुलमोहर कितना सुकून देते थे!

दुनिया मेरे आगे

> एक समय था जब राहगीर और मजदूर अपना पसीना सुखाने तथा थके हुए पैरों को आराम देने के लिए जीवनदायी प्याऊ की ओर देखते थे। प्याऊ के चारों तरफ कितनी शीतलता रहती थी! आज भी शहर में कुछ लोग अखबार की सुर्खी बनने के लिए कुछ दिन या कुछ घंटे का प्याऊ लगाते हैं, फिर उसे एकदम ही भूल जाते हैं।

हक के समांतर

महिलाओं के अधिकारों के लिए हर तरफ आवाजें सुनाई पड़ती हैं, मगर व्यवहार में लड़कियों को मानसिक और भावनात्मक रूप से इस प्रकार प्रताड़ित किया जाता है कि उनको सच में लगने लगता है उसका जन्म सिर्फ चुप रहने के लिए हुआ है। 'महिला उद्यमियों की बढ़ती जगह' (लेख, 14 मई) पढ़ा। मुख्यधारा के ठोस विश्लेषण का सामाजिक आधार होता है। क्या लड़की सिर्फ इसलिए जन्म लेती है कि वह उन लोगों के लिए चुप रहे, जिनका उसके जीवन में कोई योगदान नहीं? शादी के लिए वह क्यों दबाव में आकर भावनात्मक रूप से इतनी कमजोर होकर समझौता कर लेती है अपने सपनों से, अपनी आजादी से! वे चंद लोग जब कहते हैं कि क्या गारंटी है कि तुम सफल हो ही जाओगी, तो लड़की क्यों नहीं कह पाती है कि गारंटी तो इस जीवन का भी नहीं है! लोग क्यों उसे अपनी बात रखने पर उसे संस्कारहीन होने का तमगा दे देते हैं! क्या किसी को अपने जीवन का चुनाव करना, अपने अधिकारों के बारे में चुप रहना ही संस्कारवान होना है?

– प्रतीक्षा रानी, समस्तीपुर, बिहार

साथ का महत्त्व

हाल ही में अंतरराष्ट्रीय परिवार दिवस मनाया गया। हमारा देश संस्कार, संस्कृति और अपनत्व के लिए जाना जाता है। पर बदलते दौर ने अपनों के बीच में दूरियां बढ़ा दी हैं। भागती-दौड़ती जिंदगी, काम का बोझ और सोशल मीडिया के ज्यादा इस्तेमाल से परिवार के सदस्य इकट्ठे नहीं बैठते, बातचीत नहीं करते और एक-दूसरे को समय नहीं दे पाते। आज लोग खुद को अकेला महसूस करते हैं, जिससे तनाव, अवसाद और आत्महत्या जैसी प्रवृत्तियां बढ़ती जा रही हैं। नौकरी के चलते बच्चों के दूसरे शहरों या विदेश में जाकर बसने से भी लोग अकेले होते जा रहे हैं। आज जिस अकेलेपन और मानसिक समस्याओं के दौर से लोग गुजर रहे हैं, उसमें परिवार की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। अपनों से बात और उनका साथ अकेलेपन, मानसिक और भावनात्मक विकारों और आत्महत्या जैसी समस्याओं से उबरने में कारगर साबित होते हैं। जरूरत है साथ बैठने और खुल कर बात करने की।

– अभिलाषा गुप्ता, मोहाली

किसकी जवाबदेही

स्वाति मालीवाल के साथ अरविंद केजरीवाल के आवास पर हुई मारपीट की खबर में सच का पता लगाना बहुत जरूरी है, क्योंकि महिलाओं के साथ मारपीट, दुर्व्यवहार आदि के मामले विवादित और लंबित होते रहना उचित नहीं है। 'पर्दे में हकीकत' (संपादकीय, 20 मई) में उल्लेख है कि इस मामले में जो कुछ हुआ, उससे स्थिति अस्पष्ट ही है, क्योंकि मालीवाल द्वारा रपट में देरी और सियासत में मामला पूरी तरह घिर चुका है। ऐसा न हो कि अन्य मामलों की तरह यह मामला भी विवादित और लंबित हो जाए। आरोपी बिभव कुमार की गिरफ्तारी हुई है, लेकिन आम आदमी पार्टी इस मसले पर सियासत कर रही है, जबकि अरविंद केजरीवाल लैंगिक न्याय के पक्षधर रहे हैं। अगर वे खुद को ईमानदार मानते हैं तो इस मामले में दूध का दूध और पानी का पानी करने के लिए उनको भी नैतिकता के मद्देनजर अपना बयान देना चाहिए, क्योंकि घटना मुख्यमंत्री आवास में घटी है।

– बीएल शर्मा 'अकिंचन', उज्जैन

हादसे की सड़क

सड़क परिवहन और राजमार्ग मंत्रालय की रपट के अनुसार 2022 में 1,68,000 लोग सड़क दुर्घटना में मारे गए। यह आंकड़ा उद्वेलित कर देने वाला है। हमारे देश में प्रतिदिन हजारों नई गाड़ियां सड़कों पर उतरती हैं, मगर सड़कें उतनी की उतनी ही चौड़ी हैं। कई स्थानों पर अतिक्रमण के कारण और भी संकरी हो गई हैं। टोलटैक्स कंपनियां टोल टैक्स वसूलने के पुख्ता इंतजाम करती हैं। चिकित्सा व्यवस्था के नाम पर एंबुलेंस नंबर तो दे दिया जाता है, मगर न तो एंबुलेंस में पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं होती हैं और न ही विशेषज्ञ चिकित्सक होते हैं। अस्पताल ले जाए जाने तक ज्यादा खून बह जाने के कारण भी अधिकांश घायल मारे जाते हैं। इसलिए अब हर टोल टैक्स पर आइसीयू संसाधनों से युक्त एंबुलेंस की नियुक्ति अनिवार्य होना चाहिए, जिसमें नर्सिंग कर्मचारी और विशेषज्ञ चिकित्सक चौबीसों घंटे उपलब्ध हों।

– विभूति बुपक्या, खाचरोद, मप्र

हमें लिखें, हमारा पता : edit.jansatta@expressindia.com | chaupal.jansatta@expressindia.com

नई दिल्ली

www.readwhere.com

पाक अधिकृत कश्मीर
भारत में एकीकरण

पाक अधिकृत कश्मीर-पीओके के भारत में एकीकरण का मुद्दा भाजपा नेता चुनाव अभियान में उठा रहे हैं। 2019 में भाजपा ने पुलवामा आतंकी हमले के जवाब में पाकिस्तान पर 'सर्जिकल स्ट्राइक' को अपनी सरकार की उपलब्धि की तरह पेश किया था। पाक अधिकृत कश्मीर-पीओके पर भारत के दावे पर भाजपा ने फिर जोर देना शुरू किया है। वरिष्ठ पार्टी नेताओं ने हाल ही में पीओके के भारत के साथ एकीकरण पर भाजपा की प्रतिबद्धता रेखांकित की है। इनमें गृह मंत्री अमित शाह, रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह तथा असम के मुख्यमंत्री हिमंत बिश्व सर्मा शामिल हैं। सबसे पहले अमित शाह ने एक असाधारण घोषणा कर जोर दिया कि भारत पीओके पर अधिकार कर लेगा क्योंकि 'वह हमारा है।' इस बयान को एक साहसी राजनीतिक वादा कहा जा सकता है जो पीओके पर भाजपा का लंबे समय से दृष्टिकोण है। इसके बाद असम के मुख्यमंत्री हिमंत बिश्व सर्मा ने यही भावना व्यक्त करते हुए जोर दिया कि यह कदम केवल भावनात्मक न हो कर वर्तमान सरकार के लिए यथार्थ लक्ष्य है। इसके बाद राजनाथ सिंह का थोड़ा अलग दृष्टिकोण सामने आया जिसमें उन्होंने पीओके में मानवाधिकारों की स्थिति पर जोर दिया। राजनाथ सिंह ने अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं का आह्वान किया कि वे इस क्षेत्र में मानवाधिकार उल्लंघनों पर गौर करें। वर्तमान लोकसभा चुनाव में ऐसे बयानों का अर्थ यह स्पष्ट संकेत है कि भाजपा काफी समय से लंबित इस मुद्दे पर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहती है। पीओके का मुद्दा चुनाव विमर्श में शामिल करना पार्टी की रणनीति है जिससे वह राष्ट्रवादी तत्वों का समर्थन मजबूत करना चाहती है। वास्तव में पीओके में स्थिति अच्छी नहीं है। वहां स्थानीय जनता ज्यादा

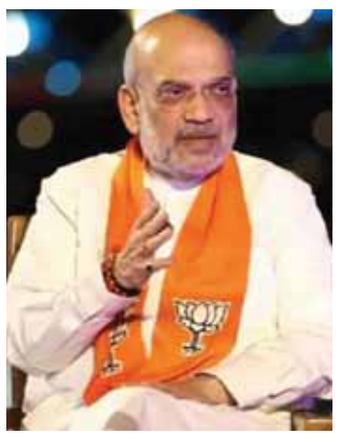

स्वायत्तता, राजनीतिक अधिकारों, ज्यादा स्वशासन तथा स्थानीय नियंत्रण की मांग कर रही है। उसे मानवाधिकार उल्लंघनों तथा नागरिक स्वतंत्रताओं पर बंधनों की भी चिन्ता है। जनता अपने मूलाधिकारों व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ राजनीतिक दमन समाप्त करने की मांग कर रहे हैं। इसके साथ ही आर्थिक विकास एक बड़ा मुद्दा है जिसके लिए बेहतर अवसरों, बेहतर ढांचागत संरचना, स्वास्थ्यरक्षा और शिक्षा की जरूरत है। क्षेत्रीय विकास के लिए ज्यादा निवेश भी जरूरी है। इन कारणों से पीओके की जनता न केवल पाकिस्तान की केन्द्रीय सत्ता के दमन का विरोध कर रही है, बल्कि वह भारत में जम्मू कश्मीर की अनुच्छेद 370 हटने के बाद से अभूतपूर्व व असाधारण प्रगति से हतप्रभ है। हाल ही में उसने जम्मू कश्मीर की लोकतांत्रिक प्रक्रिया में पूर्व अलगाववादी तत्वों तक को शामिल होकर मतदान करते देखा है। ऐसे में उसका यह सोचना स्वाभाविक है कि यदि उसका क्षेत्र पाकिस्तान के कब्जे के बजाय भारतीय जम्मू कश्मीर में शामिल होता तो बहुत अच्छा होता। केन्द्रीय रक्षा मंत्री राजनाथ सिंह ने इन स्थितियों को देखते हुए ही कहा है कि पीओके की जनता स्वयं भारत में शामिल होने की बात करेगी और यह प्रक्रिया संभवत: शुरू भी हो गई है।

पीओके के एक निर्वासित नेता ने भारत सरकार से अनुरोध किया है कि वह पीओके में मानवाधिकार उल्लंघनों का मामला अंतरराष्ट्रीय मंचों पर उठाने के साथ यह 'अवसर न चूके।' स्पष्ट रूप से वर्तमान स्थितियों में यदि पीओके की जनता और बड़ी संख्या में भारत में शामिल होने की मांग करे तो प्रधानमंत्री मोदी के नेतृत्व वाली भारत सरकार अपने दायित्व से पीछे नहीं हटेगी। मोदी सरकार पाकिस्तान या उसके समर्थकों की धमकियों से डरने वाली नहीं है। भारत की सारी जनता भावनात्मक रूप से इस मामले में भाजपा के साथ खड़ी होगी।

समाप्त हुआ सांप्रदायिक टकराव

आलोचनाओं के बावजूद, मोदी के कार्यकाल में सांप्रदायिक टकराव के मामले न्यूनतम रहे हैं। सरकार ने सांप्रदायिक सद्भावना के लिए परस्पर समझदारी पर जोर दिया है।

प्रफुल्ल गोराडिया
(लेखक, पूर्व राज्यसभा सदस्य हैं)

आलोचनाओं के बावजूद, मोदी के कार्यकाल में सांप्रदायिक टकराव के मामले न्यूनतम रहे हैं। सरकार ने सांप्रदायिक सद्भावना के लिए परस्पर समझदारी पर जोर दिया है। वर्तमान लोकसभा चुनाव प्रचार में भी मोदी के नेतृत्व में भाजपा ने इस आयाम पर बहुत जोर दिया है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने वर्तमान लोकसभा के व्यापक चुनाव प्रचार अभियान में मुस्लिम समुदाय का आह्वान किया कि वह गंभीरता से 'आत्मावलोकन' करे। उन्होंने कांग्रेस की भी जम कर आलोचना की जो लगातार समाज में 'अलगाव' की भावना को बढ़ावा देने के प्रयास कर रही है। जैसी कि उम्मीद थी, प्रधानमंत्री मोदी ने इस बारे में सीधे-सीधे अपनी बात कही है और कुछ कटु सत्य व तथ्य भी सामने रखे हैं। कोई भी तटस्थ व ईमानदार राजनीतिक विश्लेषक इस तथ्य से इनकार नहीं कर सकता है कि प्रधानमंत्री मोदी के नेतृत्व में कार्यरत प्रशासन ने देश को सांप्रदायिक टकरावों से मुक्ति दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है और दिल्ली में 2020 में हुए दंगे इसका अपवाद हैं। इसके पहले सांप्रदायिक टकराव भारत में आमतौर से होते ही रहते थे। हालांकि, वर्तमान समय में गौवंश की तस्करी को लेकर अपवाद स्वरूप कुछ सांप्रदायिक टकराव हुए हैं। गौवध एवं गौमांस के लिए गायों की तस्करी भारत में एक खास समुदाय के कुछ लोगों की प्रवृत्ति है। हिंदू हमेशा से गौवंश की हत्या का पूरी ताकत करते रहे हैं। इससे उनकी भावनायें आहत होती हैं क्योंकि वे गाय को माता की तरह मान कर उसकी पूजा करते हैं। सोलहवीं शताब्दी में मुगल बादशाह अकबर ने गौवध पर प्रतिबंध लगा दिया था क्योंकि इससे हिंदुओं की भावनायें आहत होती हैं।

बीसवीं शताब्दी में मौलाना आजाद द्वारा स्थापित जमीयते उलेमाए हिंद ने मुसलमानों को सलाह दी थी कि वे गौवध से परहेज करें क्योंकि इससे हिंदुओं की भावनायें आहत होती हैं। भारत के विभाजन में एक अलिखित समझौता यह भी था कि विभाजन के पश्चात भारत में रहने की इच्छा रखने वाले मुसलमानों को ऐसा कुछ नहीं करना होगा जिससे हिंदुओं की भावनायें आहत हों। कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना ने 22 मार्च, 1940 में लाहौर में दिए अपने भाषण में स्पष्ट कहा था कि 'हिंदू और मुसलमान एकदम अलग हैं और वे एक ही देश में साथ साथ नहीं रह सकते हैं।' डा.बी.आर. अंबेडकर ने 1941 में अपनी पुस्तक 'थाट्स आन पाकिस्तान' में इस दृष्टिकोण से सहमति जताते हुए कहा था कि भारत और पाकिस्तान के बीच जनसंख्या का हस्तांतरण उसी तरह होना चाहिए जिस प्रकार 1923 में लीग आफ नेशन्स के तत्वावधान में तुर्कों और यूनानियों के बीच हुआ था। जिन्ना, अंबेडकर और डा. राजेन्द्र प्रसाद ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया था।

1950 से 1960 तक भारत के राष्ट्रपति रहे डा. राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा था कि भारत के विभाजन के बाद जो मुसलमान पाकिस्तान नहीं जा सके हैं, उनको खासतौर से यहां रहने की अनुमति मिलनी चाहिए। लेकिन यह अनुमति नागरिकों के रूप में नहीं, बल्कि वीज़ा प्राप्त विदेशियों की तरह होनी चाहिए। जिन्ना तथा मुस्लिम लीग के अन्य पदाधिकारियों ने 1946 और 1947 में जनसंख्या के हस्तांतरण की मांग की थी। उनके दृष्टिकोण को 'द डॉन' अखबार ने प्रकाशित किया था। जिन्ना द्वारा स्थापित यह अखबार पहले दिल्ली से छपता था, पर अब कराची से प्रकाशित होता है। बाद में पाकिस्तान के पहले प्रधानमंत्री बने सर फीरोज़ खान नून ने अप्रैल, 1946 में धमकी दी थी कि यदि हिंदू जनसंख्या हस्तांतरण में बाधा पैदा करते हैं तो मुसलमान चंगेज़ खान और हलाकू खान जैसे हत्यारों के कृत्य दुहराने को बाध्य होंगे। ममडोट के नवाब इफ्तिखार हुसेन ने दिसंबर, 1946 में कहा था कि वे जनसंख्या हस्तांतरण का समर्थन करते हैं क्योंकि बहुत से मुसलमान सिंध में बसना चाहते हैं। बाद में पाकिस्तान के छठे प्रधानमंत्री बने इस्माइल चुंदरीगर ने कहा था कि अंग्रेजों को मुसलमानों को ऐसे लोगों को सौंपने का कोई अधिकार नहीं है जिन पर उन्होंने 500 साल शासन किया था। सिकंदर हयात खान के पुत्र शौकत हयात खान ने कहा था कि जनसंख्या का हस्तांतरण पाकिस्तान बनाने की मांग का अभिन्न अंग था।

मद्रास के मुस्लिम लीगी इस्माइल मुहम्मद ने कहा था कि मुसलमान इस समय जिहाद से गुजर रहे हैं। बाद में पाकिस्तान के खाद्य, कृषि एवं स्वास्थ्य मंत्री रहे राजा गजनफर अली के भी यही विचार थे। जनसंख्या के हस्तांतरण तथा हिंदुओं और मुसलमानों के अलग-अलग होने की बात काफी व्यापक हुई थी। जब दिल्ली में जामिया मिलिया विश्वविद्यालय के उप-कुलपति प्रोफेसर एम. मुजीब ने संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में तुर्की के प्रतिनिधि से मुलाकात की तो उन्होंने बड़े आश्चर्य से मुजीब से पूछा था, 'आप भारत का प्रतिनिधित्व कैसे कर रहे हैं? मैंने सोचा था कि सारे मुसलमान पाकिस्तान चले गए।'

मेरे कहने का अर्थ यह है कि यदि जनसंख्या हस्तांतरण हुआ होता तो दोनों समुदायों के बीच सारे झगड़े या टकराव हमेशा के लिए समाप्त हो गए होते। लेकिन देश के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू क वामपंथी अनुयाइयों ने भारत के संविधान में अनुच्छेद 25 व 30 शामिल कर दिए जिससे ये टकराव अब भी बने हुए हैं। इन अनुच्छेदों को शामिल करने का कारण यह था कि वे अपने महान नेता के लिए वोट का मजबूत आधार बनाए रखना चाहते थे। इससे ही पता चलता है कि 'समान नागरिक संहिता' को संविधान का ऐसा हिस्सा क्यों बनाया गया जिसे न्यायिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता था। भारत में जहां जमींदारियों व जागीरदारियों को समाप्त कर दिया गया, वहीं वक्फ पूरी तरह बिना किसी हस्तक्षेप के बनाए रखे गए जबकि अनेक इस्लामी देशों में इनका राष्ट्रीयकरण कर दिया गया था। एक खास समुदाय की पहचान को 'अलग' रखने के अनेक आयाम बनाए रखे गए जिनमें उर्दू, बहुविवाह, एकसाथ तीन तलाक, आदि शामिल हैं।

ऐसे तत्वों को न केवल अक्षुण्ण बनाए रखा गया, बल्कि लगातार बढ़ावा भी दिया गया। समानान्तर और पुरातनपंथी शिक्षा देने वाली मदरसा व्यवस्था आज भी फल-फूल रही है जो अपने ही समुदाय का नुकसान करते हुए नस्लवाद तथा अन्य संकुचित वाद की पैरवी करती और उसका प्रचार करती है। वर्तमान सरकार ने साहस के साथ कुछ सुधार किए हैं, पर उनका दायरा सीमित है। एकसाथ तीन तलाक को प्रतिबंधित किया गया है तथा मुस्लिम लड़कियों के लिए शिक्षा सुविधाओं और पहलों का विस्तार किया गया है। लेकिन इन सुधारों से लाभान्वित समुदाय की महिलाओं पर शक है कि वे इस चुनाव में एक 'हिंदू पार्टी' को वोट देंगी। इस्लाम 'वतन' या देश के बजाय 'उम्मा' या समुदाय को प्राथमिकता देता है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा था कि मुसलमानों को 'राष्ट्रीय संसाधनों पर पहला अधिकार है।' ऐसे में उनको सारे संसाधनों का 15 प्रतिशत मुसलमानों को देने में कोई हिचक न होती। उनके शासनकाल में कम से कम पांच आयोग इस बात की 'जांच' के लिए नियुक्त किए गए थे कि भारत में मुसलमान इतने पीछे कैसे रह गए और उनकी प्रगति के लिए क्या किया जाना चाहिए। इनमें सच्चर कमेटी और रंगनाथ मिश्र कमेटियां शामिल थीं।

भारत पर मुस्लिम आक्रमणकारियों व अत्याचारी शासकों के प्रभाव को अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। कुतुबुद्दीन एबक ने दिल्ली पर 1192 ईस्वी में कब्जा किया था और इसके बाद एक के बाद दूसरे मुस्लिम वंश ने 1857 तक दिल्ली पर शासन किया। इस प्रकार कुल 665 साल बाद ब्रिटिश राज ने उनको उखाड़ फेंका। क्या किसी सरकार ने पूछा कि इतने लंबे समय तक शासन के बावजूद यह समुदाय पिछड़ा क्यों रहा जिसे ऊपर उठाने की आवश्यकता हो? क्या इसका कारण 'इज़्तिहाद' या पुन: व्याख्या पर 'तक़लीद' या कट्टरता को वरीयता देना था? क्या इसका कारण महिलाओं की लगातार अनदेखी इसका कारण है जिसके चलते उनको स्थाई रूप से पिछड़ेपन में धकेल दिया गया? मुस्लिम समुदाय के प्रति की गई इन गलतियों व अपराधों का जिम्मेदार कौन है? देश में पहली बार राजनेता के रूप में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने ये असहज करने वाले सवाल उठाए हैं।

ऐसे में पिछले दस वर्ष से सत्तारूढ़ उनको या उनकी सरकार को मुसलमानों के पिछड़ेपन के लिए किसी तरह जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। मुस्लिम समाज को स्वयं गंभीर आत्मावलोकन कर इन असहज करने वाले सवालों का जवाब देना होगा।

मलयालम सुपरस्टार के जिहादी रिश्ते

इस विवाद ने एक तीखी राजनीतिक बहस को जन्म दे दिया है और केरल के राजनीतिक परिदृश्य में गहरे तनाव को उजागर कर दिया है।

कुमार चेलप्पन
(लेखक, दि पायनियर के विशेष संवाददाता हैं)

चेन्नई के व्यवसायी मोहम्मद शारशाद, जो सीपीआई (एम) के कार्यकर्ता भी हैं, द्वारा यह खुलासा कि मलयालम सिनेमा के सुपर मेगा स्टार ममूटी ने केरल के धर्मनिरपेक्ष, उदार और लोकतांत्रिक राजनीतिक नेताओं को चौंका दिया है। सीपीआई (एम), सीपीआई और कांग्रेस के नेता ममूटी को जिहादी के रूप में चित्रित करने के लिए संघ परिवार के खिलाफ खुलकर सामने आए हैं। ममूटी के जिहादी संगठनों के साथ संबंधों के बारे में खुलासा एक मुस्लिम युवक, सीपीआई (एम) के स्थानीय नेता ने किया था।

ममूटी के जिहादी संबंधों के बारे में रिपोर्ट के बारे में संघ परिवार पर हमला करने वाले पहले व्यक्ति केटी जलील विधायक थे, जो सीपीआई (एम) के पूर्व मंत्री और प्रतिबंधित सिमी के पूर्व अध्यक्ष थे। जलील अपने भाषणों और लेखों के लिए प्रसिद्ध हैं कि भारत को केवल इस्लाम के माध्यम से ही आजाद कराया जा सकता है। फिर अन्य मंत्रियों ने इस मुद्दे को उठाया और इसने केरल में हलचल मचा दी।

ममूटी, जो अपने कॉलेज के दिनों में एक औसत से भी नीचे के छात्र थे, महाराजा कॉलेज एर्नाकुलम से अरबी स्नातक हैं। जब वे छात्र थे, तब प्रोफेसर उमर अरबी विभाग के प्रमुख थे और वही प्रश्नपत्र तैयार करते थे और उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करते थे। उन दिनों महाराजा कॉलेज में कोई भी अरबी छात्र बीए अरबी परीक्षा में फेल नहीं हुआ था। सुपर मेगा स्टार की उपाधि एक पुरानी कहावत की याद दिलाती है कि अंधों के देश में एक आंख वाला ही राजा होता है। ममूटी हिंदी फिल्मों या हॉलीवुड के अपने समकक्षों से कहीं आगे हैं। जिहादी या सांप्रदायिक होना कोई अपराध नहीं है। यहां मुद्दा यह है कि जो मुस्लिम समुदाय की संगठित सौदेबाजी क्षमता पर सवाल उठाता है, वह केरल में अवांछित व्यक्ति बन जाता है। जो नेता मुस्लिम राजनीतिक और आध्यात्मिक नेताओं के छिपे हुए एजेंडे को उजागर करने का साहस करते थे, वे कूड़ेदान में समा गए। ईएमएस नंबूदरीपडु ऐसे लोगों की सूची में सबसे ऊपर हैं, जिन्हें इस्लामवादी नेताओं ने खत्म कर दिया। 1991 के विधानसभा चुनावों से पहले, ई के नयनार और एम वी राघवन (दोनों मार्क्स, लेनिन और स्टालिन से मिलने के लिए चले गए) जैसे कुछ सीपीआई (एम) नेताओं ने सुझाव दिया था कि पार्टी को मुस्लिम लीग के साथ गठबंधन करना चाहिए।

लेकिन नंबूदरीपडु ने तुरंत जवाब दिया कि मुस्लिम लीग को सहयोगी माने जाने के लिए अपना नाम और झंडा (जो पाकिस्तानी राष्ट्रीय ध्वज जैसा दिखता था) हटा देना चाहिए। मुस्लिम लीग के नेता क्रोधित हो गए और उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि नंबूदरीपडु को आकार में काट दिया जाए और सीपीआई (एम) ने उन्हें 1992 में महासचिव के प्रतिष्ठित पद से हटा दिया। मुस्लिम समुदाय के नेताओं के गुस्से का शिकार होने वाले अगले व्यक्ति ए के एंटनी थे जो 2001 से 2004 की अवधि के दौरान मुख्यमंत्री थे। 2003 में मराड समुद्र तट पर हुए नरसंहार में इस्लामिक कट्टरपंथियों द्वारा आठ हिंदू मछुआरों की हत्या एंटनी के कार्यकाल के दौरान हुई थी लेकिन उन्होंने लीग के नेताओं को खुले तौर पर चेतावनी दी कि सांप्रदायिक संगठनों की संगठित सौदेबाजी की शक्ति को उनकी सरकार द्वारा स्वीकार नहीं किया जाएगा।

इससे मुस्लिम लीग नेतृत्व आहत हुआ और उसने कांग्रेस हाईकमान से एंटनी को जल्द से जल्द मुख्यमंत्री पद से हटाने के लिए कहा। इस तरह एंटनी ने 2004 के लोकसभा चुनावों के बाद अपना इस्तीफा दे दिया और नई दिल्ली चले गए। सीपीआई (एम) के एक व्यापक रूप से सम्मानित नेता वी एस अच्युतानंदन ने 2006 में विधानसभा चुनाव के बाद मुख्यमंत्री के रूप में शपथ ली। अच्युतानंदन हमेशा किसी भी तरह की सांप्रदायिकता और कट्टरता के खिलाफ थे। 2010 में राष्ट्रीय राजधानी में एक प्रेस मीटिंग के दौरान अच्युतानंदन ने कहा कि लव जिहाद एक वास्तविकता है। उन्होंने कहा था, मुस्लिम कट्टरपंथियों का एजेंडा अगले दो दशकों में केरल को मुस्लिम बहुल राज्य में बदलना है। हालांकि सीपीआई (एम) 2011 के चुनावों में मामूली अंतर से हारी थी, लेकिन पार्टी 2016 में पूरे केरल में अच्युतानंदन की सद्भावना का इस्तेमाल करते हुए सत्ता में लौट आई। कासरगोड से तिरुवनंतपुरम तक राजमार्ग पर अच्युतानंदन के बड़े-बड़े पोस्टर लगे हुए थे, जिससे यह आभास होता था कि चुनाव के बाद मुख्यमंत्री के रूप में सीपीआई(एम) की पसंद वे ही होंगे। लेकिन पिनाराई विजयन, जिनकी तस्वीरें या पोस्टर स्पष्ट रूप से गायब थे, को पार्टी के नेतृत्व द्वारा मुख्यमंत्री के रूप में नामित किया गया और तब से वे केरल के बेताज बादशाह बन गए हैं।

अच्युतानंदन को सीपीआई (एम) में मुस्लिम समुदाय के प्रभाव के कारण दरकिनार नहीं किया गया। मुस्लिम लीग और समुदाय के नेताओं की नाराजगी ने जी सुधाकरन के राजनीतिक करियर को भी खत्म कर दिया, जो सीपीआई (एम) के एक मंत्री थे, जिन्हें अलप्पुझा के जिला-स्तरीय नेता (सभी मुस्लिम समुदाय से संबंधित) नापसंद करते थे, जहां से वे आते हैं। पीसी जॉर्ज, सात बार के विधायक जिन्होंने विधानसभा चुनावों में एलडीएफ और यूडीएफ दोनों को हराया था, उन्हें लव जिहाद और इस ऑपरेशन में विभिन्न इस्लामी संगठनों की भूमिका की आलोचना करने के लिए अपने गृह क्षेत्र पूंजर में धूल चाटनी पड़ी। चार दशकों से अधिक समय तक, जॉर्ज मुस्लिम समुदाय के लिए स्वीकार्य एक धर्मनिरपेक्ष नेता थे।

लेकिन जब उन्होंने लव जिहाद के पीड़ितों की दुर्दशा की ओर इशारा किया, तो जॉर्ज मानवता के दुश्मन बन गए और पूरे मुस्लिम समुदाय ने 2021 के विधानसभा चुनाव में उनके खिलाफ मतदान किया। यह केरल की धर्मनिरपेक्षता का ब्रांड है। इस्लामिक संगठनों पर सवाल उठाने की हिम्मत करने वालों के लिए चेतावनी का आदर्श शब्द होगा।

आप की बात

प्रवासियों का योगदान

हाल ही में जारी यूनाइटेड नेशंस माइग्रेशन एजेंसी की रिपोर्ट के अनुसार, भारतीय प्रवासियों द्वारा वर्ष 2022 में देश में भेजा गया धन या रेमिटेंस दुनिया में सबसे ज्यादा है। यह भारतीय प्रवासियों की परिश्रम, दक्षता और मातृभूमि के प्रति स्नेह को दर्शाती है। उनके द्वारा भेजी 111 अरब डॉलर की राशि ने देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। गर्व की बात है कि भारत विश्व का पहला देश बन गया है जहां प्रवासियों द्वारा एक साल में 100 अरब डॉलर से अधिक रकम भेजी गई है। यह रकम प्रत्यक्ष कुल विदेशी निवेश-एफडीआई से भी ज्यादा है। लेकिन प्रवासी भारतीयों को विदेश में अनेक समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। उन्हें कई बार दुर्व्यवहार और नस्ली घृणा का शिकार होना पड़ता है। रूस-यूक्रेन युद्ध के दौरान प्रवासी भारतीयों की सुरक्षित वापसी के लिए चलाए अभियान ने साबित किया कि भारत सरकार अपने नागरिकों की सुरक्षा के प्रति प्रतिबद्ध है। प्रवासी भारतीयों को देश में सम्माननीय स्थान देने के लिए विदेश से मताधिकार तथा दुहरी नागरिकता जैसी व्यवस्थाओं पर भी विचार होना चाहिए। इससे प्रवासी भारतीयों का देश से जुड़ाव और बढ़ेगा तथा वे नीति निर्धारण में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकेंगे। नई सरकार को इस पर विचार करना चाहिए।

अवनीश कुमार गुप्ता, आजमगढ़

विस्तारवादी चीन

पाक अधिकृत कश्मीर- पीओके में चीन कुछ समय से ज्यादा ही दिलचस्पी दिखा रहा है। चीनी राष्ट्राध्यक्षों की मंशा शुरू से ही यथासंभव दुनिया के अन्य देशों की अधिकतम भूमि हड़पने की रही है। इसके चलते अपनी सीमा से सटे हुए लगभग सभी देशों के साथ उसका भूमि विवाद चल रहा है। भारत के साथ भी भी कई वर्षों से वह यह विवाद कर रहा है और अरुणाचल तक पर अपना अधिपत्य जता रहा है। ऐसे ही पाकिस्तान जैसे मूर्ख देश ने जब चीन को पीओके का एक भूभाग प्लेट में रखकर सौप दिया तो वह इसका अधिकतम उपयोग अपने लाभके लिए करने लगा है। इसका सबसे ज्यादा तनाव भारत को झेलना पड़ रहा है। अन्य छोटे देशों को भी वह कर्ज के जाल में फंसा कर धीरे-धीरे उन पर आधिपत्य जमाने ने में लगा हुआ है। छोटे देशों के कुछ नेता चीन से भारी नजराने प्राप्त कर उसकी गोद में जा बैठते हैं। मालदीव इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण है। ऐसे में भारत को अपनी सुरक्षा व्यवस्था को और अधिक सशक्त बनाने के साथ ही अंतरराष्ट्रीय राजनय को अपने पक्ष में करने के लिए निरंतर प्रयासरत रहना होगा। भारत सरकार को अपनी रणनीतिक स्वायत्तता बनाए रखते हुए अपना कद और बड़ा करना होगा।

- सुभाष बुड़ावन वाला, रतलाम

एनटीए की परीक्षा

नेशनल टेस्टिंग एजेंसी-एनटीए द्वारा ली जाने वाली संयुक्त विश्वविद्यालय प्रवेश परीक्षा का यह तीसरा साल है। उम्मीद थी कि पिछली गड़बड़ियों का निराकरण करते हुए इस साल सब कुछ ठीक हो जाएगा लेकिन इस साल भी छात्रों को कई तरह की दिक्कतें उठानी पड़ी। पहले 12वीं के मार्क्स पर कॉलेज में एडमिशन हो जाता था। लेकिन अब उसके स्थान पर संयुक्त विश्वविद्यालय प्रवेश परीक्षा शुरू की गई है। इससे देश के लाखों छात्रों को काफी फीस अलग से देनी पड़ती है। इसके साथ ही परीक्षाओं में भयानक अव्यवस्था व्याप्त है। इस बार भी परीक्षा केंद चुनिंदा बड़े शहरों में और कहीं-कहीं शहरों से 30-40 किमी. दूर रखे गए। अनेक परीक्षा केन्द्रों में भारी अव्यवस्थाओं के चलते छात्रों को काफी तकलीफ उठानी पड़ी। कुछ केन्द्रों पर तो बिजली सप्लाई की भी समुचित व्यवस्था नहीं थी। इसके साथ ही छात्रों को इन शहरों में होटलों में रहने व भोजन आदि पर भी बहुत खर्च करना पड़ा। ऐसे में बेहतर होगा कि जहां 12वीं बोर्ड की परीक्षाएं ली जाती है उन्ही केंद्रो पर एनटीए की परीक्षाएं आयोजित की जांए ताकि छात्रों का समय व धन बच सके और वह शांत मन से अपने घर पर परीक्षा की तैयारी कर सकें। उम्मीद है कि अधिकारी इस पर गौर करेंगे।

- विभूति बुपक्या, खाचरोद

राजनेताओं की परीक्षा

चुनाव में कोई अपने खानदान की याद दिला रहा है तो कोई अपने पूर्वजों की तथाकथित कुरबानी, कोई कमर दर्द से परेशान होने के बाद भी लोकतंत्र बचाने में जुटा है तो कोई दोबारा जेल न जाने के लिए वोट मांग रहा है। जनता सोचती है कि कहीं संविधान और लोकतंत्र पर खतरे का भय दिखा कर विपक्ष देश को जातिगत रूप से तोड़ने में कामयाब तो नहीं हो जाएगा। इसके जवाब में किसान सम्मान निधि, आयुष्मान योजना, खाद्य सुरक्षा, धारा 370 का उन्मूलन, अभिनन्दन की वापसी, बालाकोट हवाई हमला, राम मंदिर, रैपिड रेल, काशी कोरिडोर, अटल टनल, उज्जवला योजना, तेज गति से होता राजमार्गो का निर्माण, फ्रेट कोरिडोर और अन्य योजनाओं पर नज़र डालें तो पिछले 10 वर्षों का कार्यकाल संतोषजनक दिखाई पड़ता है। मतदाताओं में नाराजी व सहमति अनेकों मुद्दों पर हो सकती है। संभव है कि कुछ जगह वर्तमान सरकार चूक गई हो पर अंतत: भारतीय जनता अपने विवेक से व्यापक तस्वीर तथा देश के भविष्य को देख कर फैसला देगी। देखना होगा कि राजनेता चुनाव की परीक्षा में कैसा प्रदर्शन करते हैं।

- मनोज पुरुषार्थी, मेरठ

पाठक अपनी प्रतिक्रिया ई-मेल से
responsemail.hindipioneer@gmail.com
पर भी भेज सकते हैं।

संपादकीय जागरण

बुधवार, 22 मई, 2024 : वैशाख शुक्ल - 14 वि. 2081

सीमित इच्छाएं ही असीमित आनंद का आधार होती हैं

चुनावी हिंसा

यह चिंताजनक है और निराशाजनक भी कि देश के कुछ हिस्सों में चुनावी हिंसा नए सिरे से सिर उठाती दिख रही है। इनमें से कुछ ऐसे क्षेत्र भी हैं, जहां लंबे समय से चुनावी हिंसा देखने को नहीं मिली, जैसे बिहार। एक समय था, जब बिहार चुनावी हिंसा के लिए कुख्यात था। वहां चुनाव के पहले ही हिंसा शुरू हो जाती थी, जो चुनाव बाद तक चलती रहती थी। गत दिवस छपरा में फिर से ऐसा ही देखने को मिला। पांचवें चरण के मतदान वाले दिन छपरा में राजद प्रत्याशी रोहिणी आचार्य के एक मतदान केंद्र पर पहुंचने के बाद उनके और भाजपा समर्थकों के बीच जो विवाद हुआ, उसके चलते अगले दिन दोनों पक्षों में हिंसक झड़प हुई। इस झड़प के दौरान गोली चली, जिसमें एक व्यक्ति की मौत हो गई और दो अन्य घायल हो गए। राजद और भाजपा नेता एक-दूसरे पर आरोप लगा रहे हैं। कहना कठिन है कि सच क्या है, लेकिन इसमें कोई संदेह नहीं कि लोकतंत्र में इस तरह की हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं हो सकता। छपरा में राजद और भाजपा समर्थकों के बीच हिंसक झड़प के बाद तनाव इतना अधिक है कि पुलिस बल की तैनाती बढ़ाने के साथ इंटरनेट सेवा दो दिन के लिए बंद करनी पड़ी है। चूंकि बिहार में अभी कुछ सीटों पर मतदान होना शेष है, इसलिए प्रशासन को सजग रहना होगा। चुनावी हिंसा की वापसी शुभ संकेत नहीं।

देश के अन्य राज्यों में भले ही चुनावी हिंसा पर लगाम लग गई हो, लेकिन बंगाल में पंचायत चुनावों से लेकर लोकसभा चुनावों तक हिंसा होती है। कई बार तो यह हिंसा बड़े भयावह रूप में होती है, जैसे कि पिछले विधानसभा चुनावों के बाद हुई थी। इस लोकसभा चुनाव में बंगाल में मतदान का कोई भी ऐसा चरण नहीं रहा, जब परस्पर विरोधी दलों के कार्यकर्ता टकराए न हों अथवा उनमें बम न चले हों। बंगाल में यह सिलसिला कायम है तो इसीलिए, क्योंकि कुछ दलों ने चुनावी हिंसा को अपनी राजनीतिक संस्कृति का हिस्सा बना लिया है। बंगाल चुनावी हिंसा से इसीलिए मुक्त नहीं हो पा रहा है, क्योंकि यहां राजनीतिक दल बाहुबल पर यकीन रखने वाले अपने नेताओं को संरक्षण प्रदान करते हैं। यह परंपरा वामपंथी दलों ने शुरू की थी, जिसे तृणमूल कांग्रेस ने भी अपना लिया। आज स्थिति यह है कि तृणमूल कांग्रेस कार्यकर्ताओं और समर्थकों के निशाने पर सभी विरोधी दल के नेता एवं कार्यकर्ता रहते हैं। गत दिवस पूर्व मेदिनीपुर में तृणमूल कांग्रेस और भाजपा कार्यकर्ताओं में झड़प हुई, जिसमें तीन भाजपा कार्यकर्ता जख्मी हुए। इसी तरह कोलकाता में माकपा प्रत्याशियों के प्रचार में लगे वाहन पर पथराव किया गया। चूंकि यह स्पष्ट है कि ममता सरकार की चुनावी हिंसा को थामने में कोई दिलचस्पी नहीं, इसलिए चुनाव आयोग को और अधिक सतर्कता का परिचय देना होगा।

सुदृढ़ हो बिजली व्यवस्था

गर्मी बढ़ने के साथ ही राज्य में बिजली व्यवस्था चरमरा गई है। प्रदेशभर में बिजली की कमी होने के कारण परेशानी ज्यादा बढ़ गई है। इसके लिए सीधे तौर पर बिजली निगमों का लचर आधारभूत ढांचा जिम्मेदार है। पिछले दिनों राज्य में आई आंधी के कारण गिरे खंभों और ट्रांसफार्मरों को ठीक करने का कार्य कई क्षेत्रों में अभी तक किया जा रहा है। ज्यादा संख्या में बिजली के खंभों और लाइन को नुकसान पहुंचने के कारण यह स्थिति उत्पन्न हुई है। गर्मी के कारण सब स्टेशनों के सीटी बाक्स में आग लगने के कारण बिजली कट लग रहे हैं। मौसम विभाग की भविष्यवाणी के अनुसार इस बार गर्मी ज्यादा पड़ रही है। यही कारण रहा है कि बिजली की मांग भी पिछले वर्ष की अपेक्षा बीस प्रतिशत अधिक बढ़ गई है। लोड अधिक बढ़ने से बिजली निगमों का आधारभूत ढांचा जवाब दे गया है।

सवाल यह उठता है कि जब बिजली की आपूर्ति मांग से अधिक है तो कट क्यों लगाए जाते हैं

निगमों की ओर से दावा किया जा रहा है कि उनके पास बिजली सरप्लस है। सवाल यह उठता है कि जब बिजली आपूर्ति मांग से अधिक है तो कट क्यों लगाए जाते हैं? अधिकारियों का तर्क है कि लाइनों के कारण ऐसा हो रहा है। गर्मी शुरू होने से पहले आधारभूत ढांचा सुदृढ़ किया जाना चाहिए। तार और ट्रांसफार्मर दुरुस्त किए जाने चाहिए। कई बार ऐसे मामले भी सामने आते रहे हैं कि जिन एजेंसियों को आपूर्ति की जिम्मेदारी दी गई है, वे भी ठीक काम नहीं कर रही हैं। अधिकारियों को इस ओर ध्यान देना होगा। एक फ्यूज उड़ जाने के बाद उसे ठीक करने के लिए घंटों बाद कर्मचारी पहुंचते हैं। इस व्यवस्था में सुधार की नितांत आवश्यकता है। लाइनें और ट्रांसफार्मर सही होंगे तो लाइन लास भी बहुत कम होगा। आपूर्ति व्यवस्था को सही रखने वाली निजी एजेंसियों पर सख्ती की जरूरत है।

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या ईरान के राष्ट्रपति के हेलीकाप्टर हादसे के पीछे कोई साजिश दिख रही है?

आज का सवाल

क्या गौतम गंभीर का यह कहना सही है कि आइपीएल का प्रदर्शन भारतीय टीम में चयन की कसौटी नहीं हो सकता?

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है। सभी आंकड़े प्रतिशत में।

घोर लापरवाही से उपजी त्रासदी

तरुण गुप्त

मुंबई होर्डिंग हादसा दर्शाता है कि जिन गलतियों को प्रायः हम मामूली समझकर अनदेखा कर देते हैं, उनके कितने विध्वंसक परिणाम सामने आ सकते हैं

संसदीय चुनावों की गहमागहमी के बीच स्थानीय निकायों की कार्यप्रणाली की चर्चा कुछ असंगत सी लग सकती है। यहां मैं स्पष्ट करना चाहता हूं कि जब कर्तव्यों की उपेक्षा जीवन के लिए घातक सिद्ध होने लगे तो फिर मौके और दस्तूर की परवाह नहीं की जानी चाहिए। बीते दिनों मुंबई में एक होर्डिंग गिरने से जुड़ी भयावह त्रासदी में 16 लोग असमय काल कवलित हो गए तो सैकड़ों लोग घायल हुए। यह प्रकरण इसका उदाहरण है कि जिन गलतियों को प्रायः हम मामूली समझकर अनदेखा कर देते हैं, उनके कितने विध्वंसक परिणाम सामने आ सकते हैं। हमारे नगर निगमों की सबसे बदतर कार्यप्रणाली को चिह्नित करने की बारी आए तो इसे लेकर अजीब दुविधा होती है। क्या वे कचरा प्रबंधन या ड्रेनेज के मोर्चे पर सबसे अधिक नाकारा हैं अथवा बेसहारा या पालतू जानवरों के नियमन को लेकर सबसे अधिक नाकाम, सड़क पर गड्ढे भरने में लाचार अथवा अतिक्रमण पर अंकुश लगाने में असहाय या फिर झुग्गी बस्तियों के विस्तार पर विराम लगाने में अक्षम या सामान्य स्वच्छता को लेकर लापरवाह? इसमें कोई भी विकल्प चुना जा सकता है, क्योंकि हर मोर्चा एक दूसरे के मुकाबले और बदतर आंका जा सकता है। इसी क्रम में होर्डिंग-बिलबोर्ड्स जैसे आउटडोर विज्ञापनों के लचर प्रबंधन को भी जोड़ा जा सकता है। यह घोर उपेक्षा एवं जानबूझकर की जाने वाली लापरवाही का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

स्थापित व्यवस्था यही है कि नगर निगम आउटडोर विज्ञापनों के लिए निविदाओं के माध्यम से अनुबंध करते हैं। इस व्यवसाय में निगम से अनुबंध हासिल करने वाले ठेकेदार विज्ञापनदाताओं से तो मोटी रकम वसूलते हैं, लेकिन नगर निगम को उसके अनुपात में मामूली राशि अदा करते हैं। जो भी लोग इस व्यवसाय में संलग्न हैं, उनके लिए उचित प्रतिफल के अधिकार को कोई नकार नहीं सकता। एक समाज के रूप में हम इतने परिपक्व तो हो ही गए हैं कि निजी लाभ को तिरस्कार के रूप में देखने के बजाय इसे सराहना योग्य मानते हैं। हालांकि, इसके साथ ही सरकारी खजाने में अधिक योगदान की संभावनाओं को भी तलाशा जाना चाहिए। इसलिए प्रयास इसी दिशा में होने चाहिए कि निजी लाभ और राज्य की आय के बीच उचित संतुलन साधा जा सके। अद्यतन डाटा का अभाव भी ऐसे उद्यमों की अस्पष्ट एवं बेतरतीब प्रकृति को रेखांकित करता है।

प्राधिकरणों के पास शहर में मौजूद कुल साइट्स का बमुश्किल ही कोई सारगर्भित रिकार्ड होता है। प्रत्येक होर्डिंग, बिलबोर्ड का उसकी लोकेशन, आयाम-आकार-प्रकार और अन्य प्रासंगिक बिंदुओं के साथ व्यापक रिकार्ड रखना आखिर कितना कठिन है? वास्तविकता यही है कि निगम द्वारा आधिकारिक रूप से स्वीकृत होर्डिंग्स की संख्या से कई गुना अधिक होर्डिंग्स अवैध रूप से लगे रहते हैं। इससे राजस्व की स्वाभाविक क्षति तो होती ही है, वहीं अनधिकृत लोग इस व्यवसाय में प्रवेश कर जाते हैं। मुंबई होर्डिंग हादसे ने इस ओर ध्यान आकर्षण करने के साथ ही आवश्यक आक्रोश भी उत्पन्न किया है। निःसंदेह यह इस तरह की सबसे भयावह दुर्घटना है, किंतु यह पहली ऐसी त्रासदी नहीं। तेज हवाओं और तूफानों में होर्डिंग्स का उड़ जाना साल भर चलता ही रहता है। प्राधिकरणों द्वारा सुरक्षा मानकों का शायद ही कभी गंभीरता से जायजा लिया जाता है। जबकि उपयुक्त आकार, ढांचे की मजबूती और ऐसी तकनीकी कसौटियां पहले से निर्धारित होनी चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि तेज हवाओं में ढांचा उड़ न जाए। ऐसा प्रतीत होता है कि सुरक्षा से जुड़े मानक या तो नदारद हैं या फिर प्रभावी रूप से लागू ही नहीं हैं।

अवधेश राजपूत

यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि एक्सप्रेसवे पर होर्डिंग्स लगाने की अनुमति नहीं है। चूंकि उनके चलते चालकों का ध्यान भंग होना घातक सिद्ध हो सकता है, लिहाजा इस पर प्रतिबंध है। उदाहरण के लिए दिल्ली-मेरठ एक्सप्रेसवे इस नियम की उपेक्षा का प्रतीक है। इसमें किसकी गलती है? उस ठेकेदार की, जिसने ढांचा खड़ा किया या जमीन के मालिक की, जिसने अपनी जमीन दी या फिर विज्ञापनदाता की? वस्तुतः, यह सामूहिक जिम्मेदारी का मामला है। इस क्रम में कार्रवाई का दायित्व भी राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण से लेकर स्थानीय पुलिस और प्रशासन समेत विभिन्न इकाइयों का है। वास्तविकता यह है कि जहां एक ओर परस्पर दोषारोपण की स्थित बनती है, वहीं जिन इकाइयों पर नियमों का अनुपालन कराने की जिम्मेदारी है, इसमें उनकी विफलता भी समग्रता में झलकती है। ऐसा लगता है कि कुख्यात रेत खनन माफिया की तरह एक होर्डिंग माफिया भी उभरता दिख रहा है। कानून को ताक पर रखते हुए वे तंत्र को भ्रष्ट बनाते हैं, विज्ञापन माध्यम को बदनाम करते हैं, सरकारी खजाने को क्षति पहुंचाते हैं और लोगों की सुरक्षा को खतरे में डालते हैं। इस आलेख का आशय आउटडोर विज्ञापन जैसे प्रभावी माध्यम का विरोध करना कतई नहीं है। असल में इस माध्यम के असंगठित-अनियमित स्वरूप, व्यापक भ्रष्टाचार और सुरक्षा मानकों की अवहेलना सालने वाली है। इसके अतिरिक्त, दोषियों में कानून के भय का अभाव और अधिकारियों के साथ साठगांठ दुखदायी हो गई है। इसकी स्वाभाविक परिणति नागरिकों में गहराते असुरक्षाबोध के रूप में प्रकट होती है।

स्मरण रहे कि केवल समृद्धि ही विकास के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। यह केवल एक सराहनीय आरंभिक बिंदु है। जीवन की गुणवत्ता और मानव विकास सूचकांक आवश्यक कसौटियां हैं। अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। अस्वाभाविक मृत्यु और जिस जनहानि से बचा जा सके, उसे हरसंभव प्रकार से न्यूनतम किया जाए। यह सही है कि यहां चर्चा नगर निगम से जुड़ी कुछ प्रमुख जिम्मेदारियों की हो रही है। यह भी सत्य है कि नगर निकाय राज्य सरकारों के अधीन काम करते हैं। किंतु यदि शासन के ये दो स्तंभ तमाम चुनौतियों का समाधान निकालने में विफल साबित हो रहे हैं तब फिर सर्वोच्च विधायी संस्था एवं चिंतनशील इकाई के रूप में संसद को ही पहल कर कोई राह दिखानी होगी।

आज हमारा दिल मुंबई के असहाय पीड़ितों के लिए द्रवित है, लेकिन कुछ समय बाद हम उनके शोक एवं पीड़ा को विस्मृत कर देंगे। यही मानव स्वभाव है, किंतु हमारे जेहन में यह हमेशा कैद रहना चाहिए। शोक संतप्त परिवारों को स्थितियों से सामंजस्य बिठाने में पता नहीं कितना समय लगेगा? क्या समय के साथ इतनी भीषण त्रासदियों से भी उबर पाना संभव होता है? मैं आशा तो यही करता हूं।

response@jagran.com

औरों की तरह एक और राजनीतिक दल

राजीव सचान

आप भले ही राष्ट्रीय दल बन गई हो, लेकिन नई तरह की राजनीति करने का उसका दावा नितांत खोखला निकला

जब सुप्रीम कोर्ट ने यह प्रतीति कराते हुए दिल्ली के मुख्यमंत्री एवं आम आदमी पार्टी के प्रमुख अरविंद केजरीवाल को चुनाव प्रचार के लिए 21 दिनों की जमानत दी थी कि वह उन्हें विशेष रियायत दे रहा है, तब केजरीवाल और उनके समर्थकों ने इसे अपनी जीत करार दिया था। यह स्वाभाविक भी था, क्योंकि इन दिनों जेल में बंद किसी नेता को जमानत मिल जाए तो वह अपने को विजेता घोषित कर देता है। केजरीवाल के जमानत पर बाहर आते ही उनके उसी सरकारी आवास पर उनकी पार्टी की राज्यसभा सदस्य स्वाति मालीवाल की पिटाई का मामला सामने आ गया, जिसकी साज-सज्जा पर 45 करोड़ रुपये खर्च किए गए थे। इस मामले ने केजरीवाल की स्थिति सिर मुड़ाते ही ओले पड़ने जैसी कर दी। उनके लिए इस मामले से जुड़े सवालों का जवाब देना कितना मुश्किल है, इसे लखनऊ में अखिलेश यादव के साथ उनकी प्रेस कांफ्रेंस के समय उनकी भाव-भंगिमा से समझा जा सकता है। चूंकि वह एक चतुर नेता हैं, इसलिए उन्होंने स्वाति मालीवाल की पिटाई के आरोपित अपने निजी सचिव विभव कुमार की गिरफ्तारी को इस रूप में पेश करना शुरू कर दिया कि मोदी सरकार उनकी पार्टी के सभी नेताओं को जेल में डालना चाहती है। यह दिखाने के लिए उन्होंने भाजपा कार्यालय तक मार्च निकालने की कोशिश की, लेकिन वह असरहीन ही रहा, क्योंकि दिल्ली और देश की जनता यह अच्छी तरह समझ रही है कि वह यह सब स्वाति मालीवाल प्रकरण में अपने निजी सचिव की लिप्तता से ध्यान हटाने के लिए कर रहे हैं।

केजरीवाल स्वाति मालीवाल मामले में कोई सीधी टिप्पणी करने से बच रहे हैं, लेकिन उनके साथियों ने स्वाति मालीवाल पर हमला बोल दिया है। वे सब मिलकर स्वाति को भाजपा का एजेंट करार देने में लगे हुए हैं। इस हास्यास्पद आरोप को इसके बावजूद हजम करना मुश्किल है कि भाजपा के छोटे-बड़े सभी नेता स्वाति मालीवाल प्रकरण को तूल देने में लगे हुए हैं। ऐसा हमेशा होता है। जब किसी दल के शासन वाले राज्य में महिला उत्पीड़न की कोई घटना सामने आती है तो विरोधी दल आसमान सिर पर उठाने के साथ उसे एक राजनीतिक मुद्दा बना लेते हैं और स्वयं को महिला हितैषी साबित करने में कोई और कसर नहीं उठा रखते। इस मामले में भाजपा ऐसा ही कर रही है और दूसरे दल या तो मौन साधे हुए हैं या फिर कामचलाऊ प्रतिक्रिया देकर कर्तव्य की इतिश्री करने में लगे हुए हैं।

आम आदमी पार्टी का नया शिकार स्वाति मालीवाल ● प्रेट्र

यह भी सदैव होता है कि जब कोई नेता या उसका करीबी महिला उत्पीड़न के आरोपों से दो-चार होता है तो उस दल के नेतागण तो रक्षात्मक रवैया अपना लेते हैं, लेकिन विरोधी दल उसे महिला विरोधी साबित करने के लिए हरसंभव कोशिश करते हैं। प्रज्वल रेवन्ना मामले में ऐसा ही देखने को मिला। जो भी दल प्रज्वल को लेकर जनता दल-एस और भाजपा पर हमलावर थे, वे विभव कुमार और केजरीवाल पर मुंह खोलने से बच रहे हैं। दरअसल अपने देश में महिला उत्पीड़न को लेकर जो भी गर्जन-तर्जन होता है, उसका उद्देश्य पीड़ित महिला को न्याय दिलाना कम, राजनीतिक लाभ उठाना अधिक होता है। यह रवैया सभी दलों का है। इसी कारण राजनीति में महिलाओं का प्रवेश और उनकी सक्रियता आसान नहीं है। उन्हें कदम-कदम पर मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। राजनीति उन्हीं महिलाओं के लिए आसान होती है, जो किसी राजनीतिक परिवार की सदस्य होती हैं। स्वाति मालीवाल प्रकरण क्या बता रहा है? केवल यही कि नई तरह की राजनीति और राजनीति को बदलने का दावा करने वाली आम आदमी पार्टी बिल्कुल अन्य दलों जैसी है। इस पार्टी और एक व्यक्ति या परिवार वाली अन्य पार्टियों में कोई भेद नहीं। जैसे सत्ता में बने रहने और सत्ता पाने के लिए अन्य दल कुछ भी करने को तैयार रहते हैं, वैसे ही आम आदमी पार्टी भी। आम आदमी पार्टी भले ही राष्ट्रीय दल का दर्जा पा गई हो, लेकिन नई तरह की राजनीति करने का उसका दावा नितांत खोखला साबित हो चुका है। उसके तौर-तरीकों से यह भी साफ है कि देश की राजनीति बदलने का उसका कोई इरादा नहीं था। केजरीवाल ने अपने अब तक के राजनीतिक जीवन में इतने अधिक यू-टर्न लिए हैं कि किसी के लिए यह जानना कठिन है कि वह अब किस राह पर हैं? जिन दलों को केजरीवाल और उनके साथी पानी पी-पीकर कोसते थे और परिवारवादी एवं भ्रष्ट बताते थे, उन्हें आज वे बिना किसी संकोच गले लगाए हुए हैं। अब तो केजरीवाल पत्नी सुनीता केजरीवाल को झांसी की रानी कहकर राजनीति में भी उतार चुके हैं। वह सबको यह स्पष्ट संदेश दे रहे हैं कि वही उनकी वैसी ही उत्तराधिकारी हैं, जैसे राबड़ी देवी लालू यादव की बनी थीं।

भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन से उपजी आम आदमी पार्टी आज भ्रष्टाचार के गंभीर आरोपों से घिरी है। उसके कई नेता जेल में हैं। केजरीवाल की मानें तो शराब घोटाला नितांत फर्जी है, लेकिन समझना कठिन है कि यदि यह घोटाला फर्जी है तो फिर जिस शराब नीति को केजरीवाल ने सर्वश्रेष्ठ शराब नीति बताया था, उसे वापस क्यों लिया? भ्रष्टाचार से लड़ने का दावा करने वाली आम आदमी पार्टी देश का पहला ऐसा दल बन गई है, जिसे भ्रष्टाचार में लिप्त होने के कारण आरोपित किया गया है। कोई पूछ सकता है कि है स्वाति मालीवाल का क्या होगा? उनका वही होगा जो प्रशांत भूषण, योगेंद्र यादव, आनंद कुमार, कुमार विश्वास, शाजिया इल्मी, आशुतोष, मयंक गांधी, मुनीश रायजादा समेत केजरीवाल के न जाने कितने साथियों का हुआ। ये सब या तो निकाले गए या निकल गए या फिर खुद को ठगा महसूस कर किनारे हो गए।

(लेखक दैनिक जागरण में एसोसिएट एडिटर हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

पूर्णता

ईशावास्योपनिषद में कहा गया है कि सच्चिदानंद परब्रह्म हर प्रकार से पूर्ण है। यह जगत उसी परब्रह्म से परिपूर्ण है एवं उसी से उत्पन्न हुआ है। परब्रह्म से परिपूर्ण होने के कारण यह संसार स्वयं में पूर्ण है और पूर्ण में से पूर्ण निकाल लेने पर पूर्ण ही शेष रहता है। अतः हम सब ईश्वर की पूर्ण संतानें हैं। जब तक शिशु मां के गर्भ में रहता है तब तक उसे कोई कष्ट नहीं रहता। ऐसी स्थिति में वह स्वयं को पूर्ण ही समझता है। हालांकि जैसे ही वह जन्म लेता है, वैसे ही उसे अपनी अपूर्णताओं का आभास होने लगता है। उसे भूख लगती है तो वह रोता है, उसे मां से तनिक भी दूर रहना पड़े तो वह रोता है। यहां से अपूर्णताओं का जो सिलसिला आरंभ होता है, वह मृत्युपर्यंत चलता रहता है।

ईश्वर की संतान होते हुए भी स्वयं को अपूर्ण समझना किसी अपराध से कम नहीं है। कुछ अपूर्णताएं हमारी अपनी मानसिक स्थिति की देन होती हैं जैसे स्वयं को धन, बल, पद और शरीर आदि में अन्य किसी से हीन समझना। आपके भीतर कथित अपूर्णताओं को गिनाने में संसार भी पीछे नहीं रहता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक हम दूसरों के मापदंडों पर खरे नहीं उतरते और वे हमारी त्रुटियां गिनाने में पीछे नहीं रहते। माता-पिता, गुरु और सच्चा मित्र यदि किसी कमी की ओर इंगित कर रहा है तो उनका उद्देश्य हमें ऊपर उठाना है, परंतु इनसे इतर यदि कोई ईर्ष्यालु या अभिमानी या दमनकारी व्यक्ति हमारी कमियां गिना रहा है तो हमें सचेत रहना होगा कि कहीं हम बिना वजह हीन भावना के शिकार तो नहीं होते जा रहे हैं।

स्वयं को परब्रह्म का अंश समझना अपनी पूर्णता पर विश्वास करने का सबसे सरल तरीका है। पूर्ण से पूर्ण का जन्म हुआ तो वह किसी भी स्थिति में अपूर्ण नहीं हो सकता। जिस भी स्तर पर आप हैं, उसकी पूर्णता की अपनी परिधियां होतीं हैं। पशु-पक्षी कभी भी स्वयं को अपूर्ण नहीं समझते। अपूर्णता सिर्फ मन में है, बाहर कहीं भी नहीं। हमें पूर्णता के वास्तविक मर्म को समझना चाहिए।

ट्विंकल तोमर सिंह

पाठकनामा

pathaknama@hir.jagran.com

गुलाम जम्मू-कश्मीर पर नजर रखे भारत

'गुलाम जम्मू-कश्मीर की आवाज बने भारत' शीर्षक से प्रकाशित आलेख में दिव्य कुमार सोती ने पूरे परिदृश्य का संतुलित विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उनका यह कहना उचित ही है कि इस क्षेत्र का भारत के साथ पूर्ण भौगोलिक एकीकरण के समीकरण उतने सरल नहीं हैं। ऐसे में भारत को अपने समक्ष उपलब्ध सभी विकल्पों का समग्रता में आकलन करके ही कोई कदम उठाना चाहिए। लेखक का यह तर्क भी उचित ही है कि यदि यहां किसी प्रकार का कोई सशस्त्र संघर्ष छिड़ा तो दुर्गम भौगोलिक स्थितियों के चलते वह एक अंतहीन छापामार लड़ाई में तब्दील हो जाएगा। इसका यही अर्थ होगा कि एक समस्या का समाधान खोजते समय हम किसी दूसरी समस्या को आमंत्रित कर बैठेंगे। भारत को उस राह पर आगे बढ़ना चाहिए, जिसमें कम से कम जोखिम में अधिक से अधिक बढ़त प्राप्त करना संभव हो। छिपा नहीं रहा कि गुलाम जम्मू-कश्मीर में पाकिस्तान लाठी के दम पर शासन करता आया है, ऐसे में वहां के लोगों के मानवाधिकारों को जिस प्रकार कुचला जा रहा है, उसके विरुद्ध भारत को निरंतर आवाज उठाते रहना चाहिए। उनकी आवाज उठाने के लिए जम्मू-कश्मीर विधानसभा में गुलाम जम्मू-कश्मीर के लिए जनप्रतिनिधियों को मनोनीत किए जाने की पहल भी स्वागतयोग्य होगी।

रवि वार्ष्णेय, बुलंदशहर

खस्ताहाल कांग्रेस पार्टी

संपादकीय लेख ''कांग्रेस से पलायन'' पढ़ने से स्पष्ट है 100 वर्ष पुरानी कांग्रेस पार्टी निश्चित रूप से अंतिम कगार पर है। अधिकतर वरिष्ट कांग्रेसी नेता चाहे किसी राज्य का प्रतिनिधित्व करते हों किसी भी कारणवश धीरे-धीरे पलायन करते जा रहे हैं। कांग्रेस के इस हाल में पहुंचने का मुख्य कारण कुंठाग्रस्त नीति, कमजोर नैतिकता, गांधी परिवार का नीजि स्वार्थ तथा अहंकार हैं। खासतौर पर राहुल गांधी की अपरिपक्वता, अभद्र विचारधारा के कारण कांग्रेस चित हो चुकी है। निःसंदेह देश की आखंडता तथा लोकतांत्र की मजबूती के लिए कारगर विपक्ष की जरूरत के मद्देनजर कांग्रेस पार्टी को देश के प्रति एकजुट होकर दायित्व निभाना चाहिए। चुनावी घोषणा से पहले दलबदलु नेताओं का सत्तारूढ़ ''भाजपा'' में स्वागत हानिकारक साबित हो सकता है। कांग्रेस में खलबली से ''भाजपा'' गठबंधन पर क्या प्रभाव होता है, ये चुनाव परिणाम से निश्चित होगा।

कृष्ण खन्ना, नई दिल्ली

अटकलों का पर्व

चुनाव का लोकतांत्रिक पर्व अटकलों से भरा होता है। इस बार जिस तरह से पहले चार चरणों में कम मतदान हुआ है, उसे विपक्ष और सत्ता पक्ष दोनों अपने पक्ष में हुई बात मान रहे हैं। शेयर बाजार एक स्थायी सरकार चाहता है, चाहे वह किसी की हो। वैसे भी एक पखवाड़े में हम सबको पता चल ही जाएगा की ऊंट किस करवट बैठ रहा है, तो अटकलों के बाजार को गर्म करने से क्या फायदा है। किसी को भी यह नहीं भूलना चाहिए कि अंतिम फैसला तो मतगणना के बाद ही होगा, उससे पहले होने वाली राजनीतिक बयानबाजी को गंभीरता से लेने की आवश्यकता नहीं है। वैसे भी अब केवल दो चरणों का मतदान ही शेष रह गया है। जल्द ही अटकलों पर विराम लगेगा।

नवीनचंद्र तिवारी, सवेरा अपार्टमेंट, दिल्ली

नाच न आवे आंगन टेढ़ा

महाराष्ट्र में 20 मई को हुए कम मतदान के बाद वहां के विपक्षी दलों ने यह आरोप लगाने में कोई देरी नही की कि ''सरकारी इशारे पर वोटिंग की रफ्तार धीमी की गई''। जबकि प्रत्येक लोकसभा के क्षेत्र में सामान्य तौर पर दो हजार मतदान केंद्र होते हैं। सभी में कम से कम पांच मतदान कर्मी एवं सभी प्रत्याशियों के प्रतिनिधि सदैव उपस्थित रहते हैं। इस स्थिति में यह कैसे संभव है कि ''सरकारी इच्छा'' का संदेश सभी मतदान अधिकारी तक पहुंच जाए और वह उस पर अमल करने लिए प्रत्याशी प्रतिनिधियों की उपस्थिति में सभी अन्य मतदान कर्मियों तक पहुंचा दे। अतः विपक्षी दल की यह आशंका बेकार की है और खिसियानी बिल्ली खंभा नोचे की कहावत चरितार्थ कर रही है। पूर्व में विपक्षी नेता ईवीएम से चुनाव न कराने का राग अलापने लगे थे। उनका कहना था कि ईवीएम से चुनाव कराने में हेराफेरी होने की आशंका है। जबकि ईवीएम में इंटरनेट का कनेक्शन नहीं होता है, उसको बाहर से कमांड नहीं दिया जा सकता है। मतदान प्रारंभ होने के पूर्व उसकी शून्य रीडिंग को प्रत्येक बूथ पर सभी दलों के प्रतिनिधियों के सम्मुख प्रदर्शित किया जाता है। वोटिंग समाप्त होने पर ईवीएम को सभी के सम्मुख सील कर दिया जाता है। मतगणना वाले दिन ही सभी दलों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में उस सील को तोड़कर ईवीएम को बाहर निकाला जाता है। यह और कुछ नही बस ''नाच न आवे आंगन टेढ़ा'' है।

धर्मेन्द्र नाथ रस्तोगी, गाजियाबाद

पोस्ट

इस चुनाव में मोदी सरकार को महिलाओं के एकतरफा वोट मिलते नजर आ रहे हैं। इसमें उत्तर प्रदेश का अहम रोल दिख रहा है, जिसका बड़ा श्रेय मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ के ला एंड आर्डर को जा रहा है।

अभिषेक उपाध्याय @upadhyayabhii

पहले निर्भया के साथ हुआ वीभत्स दुष्कर्म का मामला और अब पुणे में वेदांत अग्रवाल प्रकरण यही दर्शाता है कि अपराध की कसौटी पर जुवेनाइल की परिभाषा को बदलने का समय आ गया है।

अद्वैता काला @AdvaitaKala

अगर पुणे के इस बिगड़ैल 'बच्चे' और कानून को मजाक समझने वाले इसके माता-पिता को सजा नहीं हुई तो कौन इस देश की न्याय व्यवस्था पर भरोसा करेगा? इस मामले को एक मिसाल बनाइए ताकि हर 'बच्चा' डरे।

ऋचा अनिरुद्ध @richaanirudh

जजों की छुट्टियां घटाने को लेकर इंटरनेट मीडिया पर चर्चा चल रही है। बेहतर हो कि जजों की संख्या बढ़ाई जाए और बारी-बारी से वे छुट्टी पर जाएं। वे सघन मानसिक काम करते हैं, ऐसे में छुट्टी घटाना ठीक नहीं लगता। देश में जजों, अदालत/पुलिस की संख्या एवं प्रशिक्षण बढ़ाने की महती आवश्यकता है।

सुशांत झा @jhasushant

जनपथ

गए रईसी जिस तरह हुआ सभी को शोक,
अब तनाव को दीजिए किसी तरह से रोक।
किसी तरह से रोक न अच्छी कहीं लड़ाई,
हो कोई भी देश रोकिए इसको भाई।
कहीं पढ़े ना विश्व बैठ बेताल पचीसी,
जाएं ना कुछ और जिस तरह गए रईसी।

– ओमप्रकाश तिवारी

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान सम्पादक-स्व. नरेन्द्र मोहन, नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान सम्पादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: राहुल मित्तल द्वारा प्लाट नं. 15, इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली रोड, हिसार से मुद्रित एवं प्रकाशित, सम्पादक (हरियाणा) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*, दूरभाष : 01662-282900, E-mail : hisar@hir.jagran.com -पं.सं. HARHIN/2007/22609 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं सम्पादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद हिसार न्यायालय के अधीन ही होंगे। वर्ष 17 अंक 358

****